

श्रीमाताजी

शिक्षा

श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

प्रथम संस्करण : १९५२

पुनर्मुद्रित : १९५३, १९७४

अनुवादिका : श्रीमती लीलावती

नवम्बर १९७४

प्रकाशक : श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी

मुद्रक : श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी

विषय-सूची

जीवन-विज्ञान

अपने-आपको जानना और संयमित करना

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह साथ ही सुखहीन भी होता है।

तुममेंसे प्रत्येक आदमीका अपना एक लक्ष्य होना चाहिये। परंतु यह कभी न भूलना चाहिये कि जैसा तुम्हारा लक्ष्य होगा वैसा ही तुम्हारा जीवन भी होगा।

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये भी बहुमूल्य हो जायगा।

परंतु, तुम्हारा आदर्श चाहे जो भी हो, तुम उसे तबतक पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते जबतक कि तुम अपने अंदर पूर्णताको नहीं प्राप्त कर लेते।

अपनी पूर्णता प्राप्त करनेके लिये सबसे पहला पग है अपने विषयमें सचेतन होना, अपनी सत्ताके विभिन्न अंगों और उनकी अलग-अलग क्रियाओंके विषयमें सचेतन होना। तुम्हें इन सब अंगोंको एक-दूसरेसे अलग करके देखना और पहचानना सीखना चाहिये जिससे कि तुम स्पष्ट रूपमें यह पता लगा सको कि तुम्हारे अंदर जो सब क्रियाएं घटित होती हैं, तुम्हें कर्ममें जोतनेवाले जो अनेक प्रकारके आवेग-प्रवेग, प्रतिक्रियाएं और परस्पर-विरोधी इच्छाएं तुम्हारे अंदर उठती हैं, उन सबका मूल कहांपर है। यह एक श्रमसाध्य अनुशीलन है और इसके लिये बहुत अधिक लगन और सच्चाईकी आवश्यकता है। क्योंकि मनुष्यके स्वभावकी, विशेषकर उसके मनके स्वभावकी यह एक सहजप्रवृत्ति है कि वह जो कुछ सोचता, अनुभव

करता, कहता और करता है उसकी वह एक अनुकूल व्याख्या दे डालता है। जब हम बहुत अधिक सावधानीके साथ इन सब क्रियाओं-को देखेंगे, मानो इन्हें, अपने उच्चतम आदर्शके न्यायालयमें पेश करेंगे और उसके निर्णयके सामने झुक जानेका एक सच्चा संकल्प बनाये रखेंगे, केवल तभी हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे अंदर एक ऐसा विवेक उत्पन्न हो जो कभी भूल न करे। अगर हम सचमुच यह चाहते हों कि हम उन्नति करें और अपनी सत्ताके सत्यको जानने-की क्षमता प्राप्त करें अर्थात् उस एक बातको जान जायं जिसके लिये वास्तवमें हम उत्पन्न हुए हैं, जिसे हम इस पृथ्वीपर अपना 'मिशन' कह सकते हैं, तो फिर, जो चीजें हमारी सत्ताके सत्यका खंडन करती हैं, जो चीजें उसका विरोध करती हैं उन सबको, हमें, खूब निय-मित रूपसे और निरंतर होनेवाली एक क्रियाके द्वारा, अपने अंदरसे निकालते रहना होगा अथवा उन्हें अपने अंदर नष्ट करते रहना होगा। बस, इसी तरह धीरे-धीरे हमारी सत्ताके सभी भाग, सभी अंग संघटित होकर हमारे चैत्य केंद्रके इर्दगिर्द एक पूर्ण सुसमंजस वस्तुका रूप ग्रहण कर सकेंगे। इस एकीकरणके कार्यको एक हदतक पूर्णता प्राप्त करानेके लिये एक लंबे समयकी आवश्यकता होती है। अतएव, इसे सिद्ध करनेके लिये, हमें धैर्य और सहनशीलता-रूपी अस्त्रोंसे सुसज्जित होना चाहिये और यह निश्चय कर लेना चाहिये कि अपने प्रयासको सफल बनानेके लिये जितने दिनोंतक अपना जीवन बनाये रखनेकी आवश्यकता होगी उतने दिनोंतक बनाये रखेंगे।

और इस पवित्रीकरण और एकीकरणका प्रयास करनेके साथ-ही-साथ हमें अपनी सत्ताके यंत्रवत् काम करनेवाले बाहरी भागको पूर्ण बनानेकी ओर भी बहुत अधिक ध्यान देना चाहिये। जब उच्चतर सत्य अभिव्यक्त होने आये तब उसे तुम्हारे अंदर एक ऐसी मनोमय सत्ता मिलनी चाहिये जो पर्याप्त रूपमें सूक्ष्म और समृद्ध हो, जो प्रकट होनेकी चेष्टा करनेवाली भावनाको विचारका एक ऐसा रूप देनेमें समर्थ हो जो उसकी शक्ति और स्पष्टताकी रक्षा

कर सके। फिर, वह विचार जब शब्दोंका जामा पहननेकी चेष्टा करे तब तुम्हारे अंदर उसे अपनेको व्यक्त करनेकी यथेष्ट शक्ति प्राप्त हो जिससे कि शब्द उस विचारको प्रकाशित कर सकें और उसे विकृत न कर डालें। और जिस सिद्धांतके अंदर तुम सत्यको मूर्तिमान् करते हो उसे तुम्हारे सभी मनोभावों, तुम्हारी सभी इच्छाओं और क्रियाओं, तुम्हारी सत्ताके सभी कार्य-कलापोंमें झलकते रहना चाहिये। और अतमें, निरन्तर प्रयासके द्वारा, स्वयं इन सब क्रियाओंको भी अपनी उच्चतम पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये।

यह सब एक चतुर्विध साधनाके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जिसकी साधारण रूपरेखा हम यहां दे रहे हैं। इस साधनाके ये चारों रूप एक-दूसरेसे अलग-अलग नहीं हैं, इनका अनुसरण मनुष्य एक साथ ही कर सकता है और वास्तवमें ऐसा करना ही अधिक अच्छा है। इस साधनाका जहांसे आरंभ होता है उसे हम 'चैत्य साधना' कह सकते हैं। हम अपनी सत्ताकी अंतश्चेतनाके केंद्रको, अपने जीवनके उच्चतम सत्यके आंतर धामको 'चैत्य' नामसे पुकारते हैं; यही वह केंद्र है जो इस सत्यको जान सकता और अभिव्यक्त कर सकता है। अतएव हमारे लिये सबसे प्रधान बात यह है कि हम अपने अंदर इसकी उपस्थितिके विषयमें सचेतन हों, इसकी उपस्थितिके ऊपर ध्यान एकाग्र करें और अपने लिये इसे एक जीवंत सत्य बना लें और इसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लें।

इस सचेतनताको प्राप्त करनेके लिये और अंतमें इस तादात्म्यको सिद्ध करनेके लिये देश और कालके अंतर्गत बहुत-सी पद्धतियां निश्चित की गयी हैं। कुछ पद्धतियां तो मनोवैज्ञानिक हैं, कुछ धार्मिक हैं और कुछ यांत्रिक भी हैं। सच पूछा जाय तो प्रत्येक मनुष्यको वह पद्धति ढूंढ़ निकालनी होगी जो उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त हो। और अगर साधकमें सच्ची और सुदृढ़ अभीप्सा हो, अटूट और सक्रिय संकल्पशक्ति हो तो यह निश्चित है कि वह एक-न-एक तरीकेसे, बाहरमें अध्ययन और उपदेशके द्वारा, भीतरमें एकाग्रता,

ध्यान, अनुभव और दर्शनके द्वारा, उस सहायताको अवश्य पायेगा जो लक्ष्यतक पहुंचनेके लिये उसके लिये आवश्यक है। केवल एक ही चीज है जो पूर्ण रूपसे अनिवार्य है और वह है खोज निकालने और प्राप्त करनेका संकल्प। यह खोजने और प्राप्त करनेका प्रयास ही जीवका सबसे पहला कार्य होना चाहिये, यही वह बहुमूल्य मोती है जिसे हमें चाहे किसी मूल्यपर प्राप्त करना चाहिये। चाहे तुम जो कुछ करो, चाहे तुम्हारा व्यवसाय और कार्य जो भी हो, अपनी सत्ताके सत्यको पाने और उसके साथ युक्त होनेका तुम्हारा संकल्प बराबर ही जीवंत बना रहना चाहिये; जो कुछ तुम करते हो, जो कुछ तुम अनुभव करते हो और जो कुछ तुम विचार करते हो उस सबके पीछे उसे सदा विद्यमान रहना चाहिये।

आंतरिक खोजकी इस क्रियाको पूरा करनेके लिये यह अच्छा है कि मानसिक विकासकी उपेक्षा न की जाय। क्योंकि हमारा मनोमय यंत्र एक समान ही हमारा बहुत बड़ा सहायक या बहुत बड़ा बाधक हो सकता है। अपनी स्वाभाविक स्थितिमें मानव-मन बराबर ही अपनी दृष्टिमें सीमित होता है, अपनी समझमें संकीर्ण और अपनी परिकल्पनाओंमें कठोर होता है और इसे विशाल, गभीर और नमनीय बनानेके लिये कुछ प्रयासकी आवश्यकता होती है। अतएव यह बहुत आवश्यक है कि मनुष्य प्रत्येक बातपर जितने दृष्टिकोणोंसे विचार करना संभव हो उतने दृष्टिकोणोंसे विचार करे। इस विषयसे संबंधित एक अभ्यास ऐसा है जो विचारमें बहुत अधिक नमनीयता और सचाई ला देता है। वह इस प्रकार है: स्पष्ट रूपमें प्रकट की गयी एक प्रतिज्ञा — एक प्रतिपाद्य मत सामने रख देना चाहिये; फिर उसके मुकाबले उसका विरोधी मत भी ला उपस्थित करना चाहिये जो उसीकी जैसी सूक्ष्मताके साथ प्रकट किया गया हो। फिर सावधानीके साथ सोचते-विचारते हुए उस समस्याको विस्तारित करना चाहिये अथवा उसे अतिक्रम करना चाहिये जिससे कि एक ऐसा समन्वय प्राप्त हो जाय जो उन अत्यंत विरोधी मतोंको भी

एक विशालतर, उच्चतर और व्यापकतर भावनाके अंदर युक्त कर दे।

इसी तरहके वहुत-से अभ्यास काममें लाये जा सकते हैं; ऐसे कुछ अभ्यासोंका चरित्रके ऊपर लाभदायी प्रभाव पड़ता है और इस-लिये वे द्विविध लाभ प्रदान करते हैं—एक ओर तो वे मनको विकसित करते हैं और दूसरी ओर मनुष्यके अनुभवों और उनके परिणामोंके ऊपर संयम स्थापित करते हैं। उदाहरणार्थ, तुम्हें वस्तुओं और लोगोंके विषयमें अपने मनको कोई निर्णय नहीं करने देना चाहिये; क्योंकि मन ज्ञानका कोई यंत्र नहीं है—यह तो ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ है—वल्कि इसे स्वयं ज्ञानके द्वारा चालित होना चाहिये। ज्ञान तो उस क्षेत्रकी चीज है जो मानव-मनके क्षेत्रसे वहुत ऊपर है, यहांतक कि वह शुद्ध भावनाओंके क्षेत्रसे भी परे है। मनको निश्चल-नीरव और सतर्क वनाना होगा जिससे कि वह ऊपरसे ज्ञानको ग्रहण कर सके और उसे अभिव्यक्त कर सके, क्योंकि वह रूप देने, संघटन करने और कार्य करनेका यंत्र है। वास्तवमें इन्हीं कार्योंके अंदर वह अपने पूरे मूल्य और यथार्थ उप-योगिताको प्राप्त करता है।

एक दूसरा अभ्यास है जो चेतनाकी प्रगतिमें वहुत अधिक सहायक हो सकता है। जव कभी किसी विषयपर मतभेद हो, जैसे कि कोई निर्णय करनेके समय अथवा कोई कार्य पूरा करनेके समय, तव हमें कभी अपनी धारणा या दृष्टिकोणसे चिपके नहीं रहना चाहिये। वल्कि इसके विपरीत हमें दूसरेके दृष्टिकोणको समझनेका प्रयास करना चाहिये, अपने-आपको उसके स्थानमें डाल देना चाहिये और, तर्क-वितर्क या यहांतक कि लड़ाई-झगड़ा करनेके वदले, एक ऐसा समाधान ढूंढ़ निकालना चाहिये जो दोनों पक्षोंको युक्तिसंगत ढंगसे संतुष्ट कर सकें। सदिच्छासंपन्न मनुष्योंके लिये वरावर ही ऐसा एक समाधान तैयार रहता है।

यहांपर अव प्राणको विकसित करनेकी चर्चा भी अवश्य करनी

चाहिये। हमारे अंदर यह प्राणमय सत्ता ही आवेग-प्रवेग और कामना-वासनाका, उत्साह और तीव्रताका, क्रियात्मिका शक्ति और निराशापूर्ण अवसादका, उत्तेजना और विद्रोहका घर है। यह प्रत्येक चीजको गति प्रदान कर सकती, गढ़ सकती और सिद्ध कर सकती है, साथ ही वह प्रत्येक चीजको तोड़-फोड़ और नष्ट भी कर सकती है। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्यके अंदर यही भाग ऐसा है जिसे उन्नत करना सबसे अधिक कठिन है। इसे उन्नत करना दीर्घ परिश्रमका कार्य है और उसके लिये महान् धैर्यकी आवश्यकता है, और यह पूर्ण सच्चाईकी अपेक्षा रखता है। क्योंकि सच्चाई न होनेपर मनुष्य एकदम आरंभसे ही अपने-आपको धोखा देने लगेगा और उन्नतिका उसका सारा प्रयास व्यर्थ चला जायगा। अगर प्राणका सहयोग प्राप्त हो तो कोई भी सिद्धि असंभव नहीं मालूम होती, किसी प्रकारका रूपांतर असाध्य नहीं प्रतीत होता। परंतु निरंतर उसका यह सहयोग प्राप्त करना बड़ा कठिन है। प्राण एक अच्छा कार्यकर्त्ता है, परंतु अधिकांशमें वह अपनी तुष्टिकी चेष्टा करता है। अगर उसकी कामना पूरी नहीं की जाती है, चाहे पूर्ण रूपमें या आंशिक रूपमें भी, तो वह झुंझला जाता और नाराज हो जाता है और हड़ताल कर बैठता है। फलस्वरूप, कम या अधिक पूर्ण रूपसे, शक्ति विलीन हो जाती है और अपने स्थानमें मनुष्यों और वस्तुओंके प्रति विराग, निरुत्साह, या विद्रोह, अवसाद और असंतोष छोड़ जाती है। ऐसे मौकोंपर मनुष्यको स्थिर-अचंचल बने रहना चाहिये और क्रिया करना अस्वीकार कर देना चाहिये; क्योंकि ऐसे ही समयोंमें लोग मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठते हैं और जिस चीजको उन्होंने महीनों निरंतर प्रयास करके प्राप्त किया होता है, उसको, उसके द्वारा प्राप्त की हुई सारी उन्नतिको वे कुछ मिनटोंमें ही बिगाड़ या चौपट कर सकते हैं। ये सब कठिन परिस्थितियां उन सब लोगोंके लिये कम टिकाऊ और कम खतरनाक होती हैं जिन्होंने अपने हृत्पुरुषके साथ ऐसा संस्पर्श स्थापित कर लिया है जो कि उनके अंदर अभीप्सा-

की ज्योतिको सजीव रखनेके लिये और जिस आदर्शको सिद्ध करना है उसका बोध बनाये रखनेके लिये पर्याप्त है। वे लोग, इस चेतनाकी सहायतासे, धैर्य और लगनसे अपने प्राणके साथ एक विद्रोही बच्चेकी तरह व्यवहार कर सकते हैं, उसे सत्य और ज्योति दिखा सकते हैं, उसमें विश्वास जमानेका और जो सदिच्छा कुछ समयके लिये आच्छादित हो गयी थी उसे उसमें जगानेका प्रयास कर सकते हैं। ऐसे धैर्यपूर्ण हस्तक्षेपकी सहायतासे प्रत्येक कठिन परिस्थितिको एक नयी प्रगतिके रूपमें, लक्ष्यकी ओर बढ़े हुए एक नये पगके रूपमें परिवर्तित किया जा सकता है। प्रगति धीमी हो सकती है, पतन बार-बार हो सकता है, पर, यदि साहसपूर्ण संकल्प बनाये रखा जाय तो यह निश्चित है कि हम एक दिन विजयी होंगे और यह देखेंगे कि सभी कठिनाइयां सत्यकी जाज्वल्यमान चेतनाके सामने गल गयी और विलीन हो गयी हैं।

अंतमें, एक युक्तिसंगत और स्पष्टदर्शी शारीरिक शिक्षणके द्वारा हमें अपने शरीरको सुदृढ़ और सुकोमल अवश्य बनाना चाहिये जिससे कि जो सत्य-शक्ति हमारे अंदर अभिव्यक्त होना चाहती है उसके लिये हमारा शरीर इस जड़ जगत्के अंदर एक उपयुक्त यंत्र बन सके।

वास्तवमें शरीरको कभी हुक्म नहीं चलाना चाहिये, उसे तो हुक्म मानना चाहिये। अपने सहज स्वभावमें वह एक अनुगत और विश्वासपात्र सेवक है। दुर्भाग्यवश अपने प्रभुओंके, मन और प्राणके विषयमें विवेक-विचार करनेकी क्षमता बहुधा उसमें नहीं होती। वह अंधभावसे, अपने निजी हितका बलिदान देकर भी, उनकी आज्ञा-का पालन करता है। मन अपने मतवादों, अपने कठोर और मन-गढ़ंत सिद्धांतोंके द्वारा, प्राण अपनी उत्तेजनाओं, अपनी ज्यादतियों और दुर्वृत्तियोंके द्वारा शरीरकी स्वाभाविक समतोलता नष्ट करनेके लिये और उसमें थकान, दुर्बलता और रोग उत्पन्न करनेके लिये शीघ्र सब कुछ कर डालता है। इस अत्याचारसे शरीरको अवश्य मुक्त

करना होगा; और चैत्य केंद्रके साथ सत्ताका निरंतर एकत्व स्थापित करनेपर ऐसा करना संभव हो सकता है। हमारे शरीरमें मेल बैठाने और सहन करनेकी अद्भुत क्षमता है। हम साधारणतया जितना अनुमान कर सकते हैं उससे बहुत अधिक कार्य करनेकी क्षमता उसमें है। अभी जो अज्ञानी और स्वेच्छाचारी प्रभु इसपर शासन कर रहे हैं उनके स्थानमें यदि सत्ताके केंद्रीय सत्यका शासन इसपर हो जाय तो उस समय इसकी कार्यक्षमताको देखकर मनुष्य दंग रह जायगा। तब शांत और स्थिर, दृढ़ और अचल रहते हुए, हम जितना चाहें उतना प्रयास वह प्रत्येक मुहूर्त्त करेगा; क्योंकि उस समय वह सीख लिया रहेगा कि कामके अंदर किस तरह विश्राम लिया जाता है, जिस शक्तिको वह ज्ञानपूर्वक और लाभके लिये खर्च कर रहा है उसकी पूर्ति वह विश्वशक्तियोंके साथ संस्पर्श स्थापित करके किस प्रकार कर सकता है। इस स्वस्थ और संतुलित जीवनमें शरीरके अदर एक नया सामंजस्य अभिव्यक्त होगा जो उच्चतर क्षेत्रोंके सामंजस्यको प्रतिबिंबित करेगा और यह उच्चतर सामंजस्य शरीरको पूर्ण अंग-सौष्ठव और आदर्श सौंदर्य प्रदान करेगा। और यह सामंजस्य क्रमवर्द्धमान होगा, क्योंकि सत्ताका सत्य कभी भी अचल-अटल नहीं होता। वह निरंतर एक वर्द्धनशील, एक अधिकाधिक सर्वांगीण और सर्वग्राही परिपूर्णताकी ओर खुलता रहता है। जैसे ही शरीर एक क्रमवर्द्धमान सामंजस्यकी गतिका अनुसरण करना सीख लेगा, वैसे ही उसके लिये, रूपांतर-सिद्धिकी लगातार होनेवाली एक प्रक्रियाके द्वारा, भंग और विनष्ट होनेकी आवश्यकतासे बच जाना संभव हो जायगा। इस तरह मृत्युके अटल विधानके अब और बने रहनेके लिये कोई कारण नहीं रह जायगा।

जब हम पूर्णताकी इस मात्राको प्राप्त हो जायेंगे, जो कि हमारा लक्ष्य है, तब हम देखेंगे कि जिस सत्यकी खोज हम कर रहे हैं वह चार प्रधान चीजोंसे बना है — प्रेम, ज्ञान, शक्ति और सौंदर्य। सत्यके ये चारों रूप अपने-आप हमारी सत्ताके अंदर अभिव्यक्त होंगे।

चैत्य पुरुष होगा सच्चे और शुद्ध प्रेमका वाहन, मन होगा अभ्रांत ज्ञानका यंत्र, प्राण प्रकट करेगा एक अदम्य शक्ति और सामर्थ्य, और शरीर बन जायगा पूर्ण सौंदर्य और पूर्ण सामंजस्यकी प्रतिमा।

शिक्षा

मनुष्यकी शिक्षा उसके जन्मकालसे ही आरंभ हो जानी चाहिये और उसके समूचे जीवनभर चलती रहनी चाहिये। बल्कि, सच पूछा जाय तो, यदि शिक्षाको अत्यधिक मात्रामें फलदायक होना हो तो उसे जन्मसे पहले ही आरंभ हो जाना चाहिये। वास्तवमें स्वयं माता ही इस शिक्षाका प्रारंभ द्विविध क्रियाके द्वारा करती है: सबसे पहले वह अपनी निजी उन्नतिके लिये उसे स्वयं अपने ऊपर आरंभ करती है, और फिर उस बच्चेके ऊपर आरंभ करती है जिसे वह अपने अंदर स्थूल रूपमें गढ़ती है। यह बात निश्चित है कि जन्म लेनेवाले बच्चेका स्वभाव बहुत कुछ उसे उत्पन्न करनेवाली मातापर, उसकी अभीप्सा और संकल्पपर निर्भर करता है और जिस भौतिक वातावरणमें वह निवास करती है उसका प्रभाव तो पड़ता ही है। जो शिक्षा मांको प्राप्त करनी है उसके लिये यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि उसके विचार सदा सुन्दर और शुद्ध हों, भाव उच्च और सूक्ष्म तथा चारों ओरका वातावरण यथासंभव सुसमंजस और अत्यंत सादगीसे भरा हुआ हो। और अगर इसके साथ ही वह चेतन और निश्चित रूपमें यह इच्छा भी रखे कि वह जिस ऊंचे-से-ऊंचे आदर्शकी धारणा कर सकती है उसीके अनुसार वह बच्चेको बनायेगी तो बच्चेको संसारमें आनेके लिये खूब उत्तम अवस्थाएं प्राप्त होंगी और उसके लिये अधिक-से-अधिक संभावनाएं खुल जायंगी। भला ऐसी अवस्थामें कितने अधिक कठिन प्रयासों और निरर्थक जटिलताओं-से बचा जा सकता है!

शिक्षाके पूर्ण होनेके लिये उसमें पांच प्रधान पहलू होने चाहियें। इनका संबंध मनुष्यकी पांच प्रधान क्रियाओंसे होगा — भौतिक,

प्राणिक, मानसिक, आंतरात्मिक और आध्यात्मिक। साधारणतया शिक्षाके ये सब पहलू व्यक्तिके विकासके अनुसार, एकके बाद एक करके, कालक्रमसे आरंभ होते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि एक पहलू दूसरेका स्थान ले ले, बल्कि सभी पहलुओंको, जीवनके अंतकालतक, परस्पर एक-दूसरेको पूर्ण बनाते हुए जारी रहना चाहिये।

हम यहां शिक्षाके इन पांचों पहलुओंपर एक-एक करके विचार करेंगे और उनका पारस्परिक संबंध भी समझनेका प्रयत्न करेंगे। परंतु इस विषयके विस्तारमें जानेसे पहले मैं माता-पिताओंको एक सलाह देना चाहती हूं। इनमें अधिकांश लोग विभिन्न कारणोंसे बच्चोंकी सच्ची शिक्षाके विषयमें बहुत कम सोचते हैं। जब उन्होंने संसारमें एक बच्चेको जन्म दे दिया, उसके भोजनका प्रबंध कर दिया तथा उसका अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये लगभग काफी अच्छे ढंगसे देखभाल रखते हुए उसकी विभिन्न भौतिक आवश्यकताएं पूरी कर दीं तब वे समझ लेते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभा दिया है। कुछ दिन बाद वे उसे स्कूलमें प्रविष्ट करा देंगे और उसकी मानसिक शिक्षाका भार अध्यापकके हाथोंमें सौंप देंगे।

कुछ माता-पिता ऐसे भी हैं जो यह जानते हैं कि उनके बच्चेको शिक्षा मिलनी चाहिये और वे उसे शिक्षा देनेकी चेष्टा भी करते हैं। पर उनमेंसे बहुत थोड़े लोग — जो लोग इस विषयमें अत्यंत तत्पर और सच्चे होते हैं उनमेंसे भी बहुत थोड़े लोग — यह जानते हैं कि बच्चेको शिक्षा देनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सबसे पहला कर्तव्य है अपने-आपको शिक्षा देना, अपने विषयमें सचेतन होना और अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित करना जिससे कि हम अपने बच्चेके सामने कोई बुरा उदाहरण न पेश करें क्योंकि एकमात्र उदाहरणके द्वारा ही शिक्षा फलदायी बनती है। केवल अच्छी बातें कहने और बुद्धिमानीका परामर्श देनेका बच्चेपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है, यदि हम अपने जीवंत उदाहरणके द्वारा अपनी सिखायी बातोंका सत्य उसे न दिखा दें। सच्चाई, ईमानदारी, स्पष्टवादिता, साहस, निष्काम-

भाव, निःस्वार्थता, धैर्य, सहनशीलता, अध्यवसाय, शांति, स्थिरता, आत्म-संयम आदि सभी ऐसे गुण हैं जो सुन्दर भाषणोंकी अपेक्षा अनंत-गुना अधिक अच्छे रूपमें अपने उदाहरणके द्वारा सिखाये जाते हैं। माता-पिताओ ! एक ऊंचा आदर्श अपने सामने रखो और उसी आदर्शके अनुकूल सर्वदा कार्य करो। तुम देखोगे कि तुम्हारा बच्चा भी धीरे-धीरे उस आदर्शको अपने अंदर ला रहा है और जो सब गुण तुम उसके स्वभावमें देखना चाहते हो उन्हें वह अपने-आप अभिव्यक्त कर रहा है। यह अत्यंत स्वाभाविक है कि बच्चे अपने माता-पिताके प्रति आदर और भक्तिभाव रखते हैं, अगर वे एकदम अयोग्य ही न हों तो, वे अपने बच्चोंको देवता जैसे प्रतीत होते हैं और बच्चे यथाशक्ति उत्तम-से-उत्तम रूपमें उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा करते हैं।

बहुत थोड़े-से लोगोंको छोड़कर, प्रायः सभी माता-पिता इस बातका विचार नहीं करते कि उनके दोषों, आवेगों, दुर्बलताओं और आत्मसंयमके अभावका कितना बुरा प्रभाव उनके बच्चोंपर पड़ता है। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा तुम्हारा आदर करे तो अपने लिये आदरभाव रखो और प्रत्येक मुहूर्त्त सम्मानके योग्य बनो। कभी भी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, असहिष्णु और क्रोधित मत होओ। जब तुम्हारा बच्चा तुमसे कोई प्रश्न पूछे तब तुम, यह समझकर कि वह तुम्हारी बात नहीं समझ सकता, उसे जड़ता और मूर्खताके साथ कोई उत्तर मत दो। अगर तुम थोड़ा कष्ट स्वीकार करो तो तुम सदा ही उसे अपनी बात समझा सकोगे। इस प्रसिद्ध उक्तिके होते हुए भी कि 'सत्य बोलना सदा अच्छा नहीं होता', मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूं कि 'सत्य कहना सदा अच्छा होता है', चतुराई केवल इस बातमें है कि उसे इस ढंगसे कहा जाय कि सुननेवालेका मस्तिष्क उसे ग्रहण कर ले। जीवनके प्रारंभिक कालमें बारहसे चौदह वर्षकी अवस्थातक, बच्चोंका मन सूक्ष्म भावनाओं और सामान्य विचारोंतक नहीं पहुंच पाता। पर फिर भी तुम ठोस उपमा, रूपक या दृष्टांत द्वारा ये सब चीजें समझनेका अभ्यास उसे करा सकते

हो। काफी बड़ी उम्रतक और जो लोग मानसिक रूपसे सदा ही बच्चे बने रहते हैं उन लोगोंके लिये सैद्धांतिक विवेचनकी एक ढेरके अपेक्षा एक आख्यान, एक कथानक, यदि अच्छे ढंगसे कहा जाय तो, अधिक शिक्षाप्रद होता है। एक भूलसे तुम्हें और बचना होगा। जबतक कोई निश्चित उद्देश्य न हो और एकदम अनिवार्य न हो जाय तबतक कभी अपने बच्चेको बुरा-भला मत कहो। बार-बार डांट-फटकार खानेसे बच्चा उसके प्रति कुंद हो जाता है और फिर वह शब्दों और स्वरकी कठोरताको बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता। विशेषकर इस बातकी सावधानी रखो कि ऐसे अपराधके लिये, जिसे तुम स्वयं करते हो, उसे कभी न डांटो। बच्चोंकी दृष्टि बड़ी पैनी और साफ होती है; वे बहुत जल्दी तुम्हारी दुर्बलताओंका पता लगा लेते हैं और उन्हें बिना किसी दयाभावके नोट कर लेते हैं।

जब बच्चा कोई भूल कर बैठे तो अपनी ओरसे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दो कि वह अपने-आप सरलता और सच्चाईके साथ उसे स्वीकार कर ले। और जब यह स्वीकार कर ले तब तुम दयालुता और प्रेमके साथ उसे समझा दो कि उसके कार्यमें क्या भूल थी और कि उसे फिर दुबारा वैसा नहीं करना चाहिये। किसी भी हालतमें उसे बुरा-भला मत कहो, स्वीकार किये हुए अपराधको अवश्य क्षमा कर देना चाहिये। तुम्हें अपने और अपने बच्चेके बीच किसी प्रकारका भय नहीं घुसने देना चहिये; भयके द्वारा शिक्षा देना बड़ा खतरनाक तरीका है; यह सदा ही छल-कपट और असत्य-को उत्पन्न करता है। स्पष्टदर्शी, सुदृढ़ पर साथ ही कोमल प्रेम और पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान विश्वासका बंधन पैदा करते हैं जो तुम्हारे बच्चेकी शिक्षाको फलदायी बनानेके लिये तुम्हारे लिये अत्यंत आवश्यक होता है। और फिर यह कभी न भूलो कि तुम्हें अपने कर्तव्यके शिखरपर स्थित रहने तथा उसे वास्तविक रूपमें निभानेके लिये सदा और निरंतर ऊपर उठना होगा। बच्चेको जन्म देनेके नाते ही तुम्हें उसके प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिये।

शरीरकी शिक्षा

मानव-चेतनाके जितने भी स्तर हैं उनमें भौतिक स्तर एक ऐसा स्तर है जो पूरी तरहसे पद्धति, व्यवस्था, अनुशासन और प्रणालीके द्वारा नियंत्रित होता है। जड़तत्त्वमें जो नमनीयता और ग्रहण-शीलताका अभाव है उसके स्थानपर हमें पूरे व्योरेके साथ एक ऐसा सुसंगठन ले आना होगा जो सच्चा भी हो और व्यापक भी। इस सुसंगठनको लाते हुए, अवश्य ही, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारी सत्ताके सभी लोक-लोकांतर परस्पर-संवद्ध, एक-दूसरेपर आश्रित और एक-दूसरेमें प्रवेश किये हुए हैं। फिर भी, यदि किसी मानसिक या प्राणिक आवेगको शरीरके अंदर व्यक्त होना हो तो उसे एक समुचित और सुनिश्चित प्रणालीका अनुसरण करना होगा। यही कारण है कि शरीरकी समस्त शिक्षाको, अगर उसे फलोत्पादक होना हो तो, कठोर और सविस्तार, पूर्वदर्शी और प्रणालीवद्ध होना होगा। उसे आदतोंका रूप ग्रहण कर लेना होगा; क्योंकि शरीर सचमुच अभ्यासोंसे गठित एक सत्ता है। परंतु वे सव अभ्यास संयमित और नियमित होने चाहियें और साथ ही उनमें इतनी पर्याप्त मात्रामें लोच होनी चाहिये कि वे सभी परिस्थितियों और मानव आधारकी वृद्धि और विकासकी आवश्यकताओंके अनुकूल अपनेको ढाल लें।

शरीरकी समस्त शिक्षा एकदम जन्मके साथ ही आरंभ हो जानी चाहिये और सारे जीवनभर चलती रहनी चाहिये। उसके विषयमें ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता कि उसका आरंभ वहुत जल्दी हो गया है अथवा वह वहुत देरतक चल रही है।

शरीरकी शिक्षाके तीन प्रधान रूप हैं: (१) शारीरिक क्रियाओं-

को संयमित और नियमित करना, (२) शरीरके सभी अंगों और क्रियाओंका सर्वांगपूर्ण, प्रणालीवद्ध और सुसमंजस विकास करना, और (३) अगर शरीरमें कोई दोष और विकृति हो तो उसे सुधारना।

यह कहा जा सकता है कि जीवनके एकदम आरंभिक दिनोंसे ही, वल्कि करीव-करीव आरंभिक घंटोंसे ही, वच्चेको भोजन, नींद, मलत्याग इत्यादिके विषयमें पहले प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिये। अगर वच्चा अपने जीवनके एकदम प्रारंभसे अच्छी आदतें डाल ले तो वह अपने सारे जीवनभर वहुत-सी तकलीफों और असुविधाओंसे वचा रहेगा, साथ ही उसके जीवनके आरंभिक वर्षोंमें उसकी देख-भालका भार जिन लोगोंपर होगा उनका काम भी वहुत अधिक आसान हो जायगा।

लोगोंकी यह मान्यता है कि अगर इस शिक्षाको युक्तिपूर्ण, उन्नत और फलदायी होना हो तो यह अवश्य ही मानव शरीर के सरसरी ज्ञानपर, उसकी रचना और उसकी क्रियाओंके ज्ञानपर आश्रित होनी चाहिये। जैसे-जैसे वच्चा वड़ा हो वैसे-वैसे उसे अपने अंग-प्रत्यंगोंकी क्रियाओंको देखनेका अभ्यास कराना चाहिये जिससे वह उन्हें अधिकाधिक नियमित कर सके, इस वातका ध्यान रख सके कि उनकी क्रियाएं स्वाभाविक और सुसमंजस हों। जहांतक उठने-वैठने, हिलने-डुलने एवं अन्य चेष्टाओंके ढंगका प्रश्न है वुरी आदतें बहुत कम उम्रमें और वहुत जल्दी ही वन जाती हैं और वे सारे जीवनके लिये वड़े खतरनाक परिणाम उत्पन्न कर सकती हैं। जो लोग शिक्षाके प्रश्न-पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, अपने बच्चोंको स्वाभाविक ढंगसे विकसित होनेके लिये उत्तमोत्तम सुविधाएं देना चाहते हैं उन सबको आवश्यक सूचनाएं और उपदेश आसानीसे प्राप्त हो सकते हैं। आज इस विषयका अध्ययन अधिकाधिक सावधानीके साथ किया जा रहा है और बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई और हो रही हैं। जो इस विषयपर आवश्यक सभी प्रकारके निर्देश और ज्ञान प्रदान कर सकती हैं।

यहां मेरे लिये यह संभव नहीं कि मैं इस विषयके समाधानके लिये पूरे ब्योरेके साथ इसकी कार्यप्रणालीमें प्रवेश करूं, और फिर प्रत्येक समस्या ही अन्योंसे भिन्न है और समाधान भी प्रत्येक व्यक्ति-के प्रसंगमें अलग और समुचित होना चाहिये। भोजनके प्रश्नका अध्ययन खूब विस्तार और सावधानीके साथ किया गया है। बच्चोंके विकासमें सहायता देनेवाले खाद्य पदार्थोंको साधारणतया लोग जानते हैं और उनका उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं। परंतु यहां यह याद रखना बहुत आवश्यक है कि शरीरकी सहजबुद्धि, जबतक कि वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, सभी सिद्धांतोंसे अधिक जानती है। अतएव, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे बच्चे स्वाभाविक ढंगसे विक-सित हों तो तुम्हें उन्हें ऐसा भोजन खानेके लिये बाध्य नहीं करना चाहिये जिससे वे ऊब गये हों; क्योंकि शरीरमें प्रायः एक सुनिश्चित सहजबोध होता है जिससे वह जान लेता है कि उसके लिये कौनसी चीज हानिकारक है; अवश्य ही, अगर बच्चा चंचल और मनमौजी हो तो बात दूसरी है।

अपनी साधारण स्थितिमें, अर्थात् मानसिक धाणाओं या प्राणिक आवेगोंका कोई हस्तक्षेप न हो तो, शरीर यह भली-भांति जानता है कि उसके लिये कौन-सी अच्छी चीज और आवश्यक है। पर इस प्रकारकी स्थिति सामान्य रूपमें केवल तभी आ सकती है जब कि बच्चेको खूब सावधानीके साथ शिक्षा दी गयी हो और वह वासनाओं-को आवश्यकताओंसे पृथक् करना सीख गया हो। जो भोजन सादा और स्वास्थ्यप्रद हो, सारतत्त्वसे भरपूर और भूख बढ़ानेवाला हो, सब प्रकारकी व्यर्थकी जटिलताओंसे खाली हो, उसका स्वाद उसे पड़ना चाहिये। उसे अपने रोजके भोजनमें उन सब चीजोंसे अवश्य परहेज रखना चाहिये जो महज पेटको भर देती और भारीपन ले आती हैं, विशेषकर उसे यह सिखाना चाहिये कि वह अपनी भूखके अनुसार भोजन करे, न अधिक न कम, और अपने लोभ और पेटूपन-को तृप्त करनेका एक अवसर समझकर भोजन न करे। बिलकुल

बचपनसे ही हमें यह जान लेना चाहिये कि हम अपने शरीरको सबल और स्वस्थ रखनेके लिये भोजन करते हैं, रसनाके सुखोंका उपभोग करनेके लिये नहीं। बच्चेको वही भोजन देना चाहिये जो उसके स्वभावके अनुकूल हो, स्वास्थ्य और स्वच्छतासंबंधी नियमोंके अनुसार बना हो, जो खानेमें स्वादिष्ट हो और फिर भी बहुत सादा हो और यह भोजन बच्चेकी उम्र और उसके नियमित कार्योंके अनुसार चुना और नपा होना चाहिये; इसमें सभी रासायनिक और शक्तिशाली तत्त्व होने चाहियें जो शरीरके सभी अंगोंके विकास और संतुलित वृद्धिके लिये आवश्यक हैं।

क्योंकि बच्चेको वही भोजन दिया जायगा जो उसके स्वास्थ्य की रक्षा करने और आवश्यक शक्ति प्रदान करनेके लिये आवश्यक होगा, हमें इस विषयमें खूब सावधान रहना चाहिये कि बच्चेको परेशान करने या दंड देनेके एक उपायके रूपमें भोजनका उपयोग न किया जाय। बच्चेको यह कहनेकी आदत कि, "तुम अच्छे लड़के नहीं हो, तुम्हें तीसरे पहरका कलेवा नहीं दिया जायगा इत्यादि", एकदम हानिकारक है। ऐसा कहकर तुम उसकी नन्हीं-सी चेतनामें यह संस्कार उत्पन्न करते हो कि भोजन उसे मुख्यतः अपनी लोभ-लालसाको तृप्त करनेके लिये दिया जाता है न कि इसलिये कि वह उसके अच्छे शरीरके अच्छे ढंगसे कार्य करते रहनेके लिये अनिवार्य है।

उसके बाद एक दूसरी बात बच्चेको एकदम बाल्यावस्थामें ही सिखानी चाहिये और वह है — स्वच्छता और स्वस्थ आदतोंके प्रति अनुराग। अगर तुम चाहते हो कि स्वच्छताके लिये यह अनुराग और स्वास्थ्यके नियमोंके लिये आदर-भाव बच्चेमें दिखायी दे तो तुम्हें बड़ी सावधानीके साथ यह ख्याल रखना चाहिये कि कहीं तुम उसके अंदर बीमारीका भय न भर दो। भय शिक्षाके लिये सबसे बुरा साधन है, क्योंकि भय अपने विषयको खींच ले आनेका सबसे अधिक निश्चित पथ है। फिर भी, जहां एक ओर बीमारीका भय नहीं होना चाहिये, वहां दूसरी ओर उसमें किसी प्रकारकी रुचि होनी

भी उचित नहीं। यह एक प्रचलित विश्वास है कि तीक्ष्ण बुद्धिवाले लोगोंका शरीर दुर्वल होता है। यह भ्रम है और इसका कोई आधार नहीं। संभवतः कभी एक युग था जब कि शारीरिक अस्त-व्यस्तताके प्रति लोगोंकी एक विचित्र और गंदी रुचि थी पर सौभाग्यकी वात है कि वह प्रवृत्ति अब दूर हो गयी है। आजकल लोग सुगठित, सुदृढ़, मांसल, बलिष्ठ और पूर्ण सुडौल शरीरकी प्रशंसा करते हैं और उसका सच्चा मूल्य समझते हैं। पर, जो हो, बच्चोंको यह शिक्षा देनी चाहिये कि वे स्वास्थ्यको आदरकी दृष्टिसे देखें; उस स्वस्थ मनुष्यकी प्रशंसा करें जिसका शरीर बीमारीके आक्रमणको दूर फेंक देनेकी कला जानता है। बहुत बार बच्चे बीमारीका बहाना करते हैं जिससे वे किसी आवश्यक किंतु कष्टपूर्ण कार्यसे बच जायं, उस कार्यसे बच जायं जिसमें उनकी रुचि नहीं, अथवा उनके माता-पिताका हृदय पसीज जाय और वे उनकी इच्छाको तृप्त कर दें। बच्चोंको यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र यह भी सिखा देना चाहिये कि यह पद्धति बहुत लाभदायी नहीं है और बीमार हो जानेपर लोग तुममें अधिक दिलचस्पी नहीं दिखलायेंगे बल्कि उससे विपरीत अवस्थामें दिखलायेंगे। दुर्वल लोगोंमें यह विश्वास करनेकी प्रवृत्ति होती है कि उनकी दुर्वलता उन्हें विशेष रूपसे लोगोंका प्रिय बना देती है और वे लोग, यदि आवश्यक हो, अपने साथ और अपने इर्दगिर्द रहनेवाले लोगोंका ध्यान और सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित करनेके एक साधनके रूपमें अपनी इस दुर्वलताका और यहांतक कि अपनी बीमारीका उपयोग करते हैं। किसी भी कारणसे इस घातक प्रवृत्तिको प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये। बच्चोंको सिखाना चाहिये कि बीमार होना दोष-त्रुटि और हीनताका सूचक है न कि किसी गुण या त्यागका।

इसके लिये उत्तम बात यह है कि जब बच्चा अपने अंगोंका व्यवहार करने योग्य हो जाय तब वह प्रतिदिन कुछ समय अपने शरीरके सभी भागोंको विधिपूर्वक और नियमित रूपसे विकसित करनेमें

लगाये। प्रत्येक दिन २० से ३० मिनटतक — अगर संभव हो तो सवेरे विछौनेसे उठनेके वादका समय अधिक अच्छा होगा — यदि लगाये जाय तो वे मांसपेशियोंमें अच्छी गति और संतुलित वृद्धि ले आनेके लिये पर्याप्त होंगे। साथ ही उससे जोड़ों और रीढ़की हड्डी-का सख्त पड़ जाना भी रुक जाता है जो कि साधारणतया अपने समयसे वहुत पहले ही आ जाता है। वच्चोंकी शिक्षाके साधारण कार्यक्रमके अंदर खेल-कूदको काफी अच्छा स्थान देना चाहिये; इससे उसे समस्त औषध-जगत्की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त होगा। अगर धूपमें एक घण्टा व्यायाम किया जाय (शारीरिक हरकतें की जायं) तो कमजोरी या खूनकी कमी दूर करनेमें वह वलवर्धक दवाओं (टानिकों) के एक समूचे भांडारसे कहीं अधिक काम करता है। मैं तो तुम्हें यह सलाह दूंगी कि जवतक दूसरी तरहसे काम चलाना पूर्ण रूपसे असंभव न हो जाय तवतक कभी भी औषध मत ग्रहण करो; और इस "पूर्ण रूपसे असंभव" के विषयमें भी तुम्हें पूर्ण रूपसे कठोर होना चाहिये — इस स्थितिको सहज ही स्वीकार नहीं करना चाहिये। यद्यपि शरीर-चर्याके इस प्रोग्रामके अंदर कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध साधारण पद्धतियां हैं जिनके द्वारा शरीरका उत्तमोत्तम विकास किया जा सकता है, फिर भी यदि किसी पद्धतिको पूर्ण रूपसे फलदायी बनाना हो तो प्रत्येक व्यक्तिके लिये स्वतंत्र रूपसे विचार करना चाहिये और उसके लिये कोई पद्धति निश्चित करनेके लिये यदि संभव हो तो किसी सुयोग्य व्यक्तिकी सहायता लेनी चाहिये अथवा इस विषयसे संवंधित पुस्तकोंका अवलोकन करना चाहिये। ऐसी पुस्तकें काफी छप चुकी हैं अथवा छप रही हैं।

पर, हर हालतमें, वच्चेको, चाहे वह जो कुछ भी करता हो, सोनेके लिये काफी समय मिलना चाहिये। यह समय उम्रके अनु-सार अलग-अलग हो सकता है। पालनेके वच्चेको जगनेकी अपेक्षा सोना अधिक चाहिये। पर जैसे-जैसे वच्चा वढ़ता जायगा वैसे-वैसे सोनेका समय कम होता जायगा। परंतु यवावस्था आनेतक

यह समय ८ घंटेसे कम नहीं होना चाहिये और फिर सोनेका स्थान खूब शांत और हवादार होना चाहिये। और कभी व्यर्थमें बच्चेको प्रारंभिक रातकी नींदसे वंचित नहीं करना चाहिये। स्नायुओंको आराम पहुंचानेके लिये आधी रातसे पहलेका समय सबसे उत्तम है। फिर जगनेके समयमें भी प्रत्येक आदमीके लिये, जो कि अपनी स्नायुओंमें समतोलता बनाये रखना चाहता है, विश्राम करना अत्यंत आवश्यक है। मांसपेशियों और स्नायुओंको विश्राम देनेकी विधि जानना एक कला है और बिलकुल छोटी अवस्थामें ही बच्चोंको इसकी शिक्षा देनी चाहिये। पर बहुतेरे माता-पिता ऐसे होते हैं जो इसके विपरीत अपने बच्चोंको निरंतर कार्य करते रहनेके लिये बाध्य करते हैं। जब बच्चा चुपचाप बैठता है तब वे समझते हैं कि वह बीमार हो गया है। यहांतक कि ऐसे माता-पिता भी हैं जिन्हें अपने बच्चोंसे घरेलू काम करानेकी बुरी आदत होती है और इस तरह वे बच्चोंके आराम करनेका समय ले लेते हैं। एक बढ़ते हुए स्नायुमण्डलके लिये इससे अधिक बुरी चीज और नहीं होती। अत्यंत लगातार होनेवाले प्रयास-का दबाव अथवा उसके ऊपर लादे हुए, स्वेच्छापूर्वक पसंद नहीं किये हुए, कार्यका भार सहनेमें वह असमर्थ होता है। समस्त प्रचलित भावनाओं और धारणाओंके विरुद्ध मेरा तो मत यह है कि बच्चोंसे सेवाकी मांग करना उचित नहीं है, यह समझना अनुचित है कि माता-पिताकी सेवा करना बच्चेका कर्तव्य है। बल्कि अधिक बड़ा सत्य इसके विपरीत है : निश्चय ही यही स्वाभाविक है कि माता-पिता अपने बच्चोंकी सेवा करें, कम-से-कम उनकी अधिकतम देख-भाल करें। यदि बच्चा स्वतंत्रतापूर्वक परिवारके लिये काम करना स्वयं पसंद करे और कार्यको खेलके रूपमें करे तभी उसे ऐसा करने देना उचित है। और उस हालतमें भी हमें इस विषयमें सावधान रहना चाहिये कि किसी तरह उसके आरामका समय कम न हो जाय जो कि उसके शरीरके समुचित रूपसे कार्य करनेके लिये अत्यंत आवश्यक है।

मैं कह चुकी हूं कि बिलकुल छोटी उम्रसे ही बच्चोंको शारीरिक स्वास्थ्य, शक्ति-सामर्थ्य और संतुलनका आदर करना सिखाना चाहिये। सौंदर्यकी महान् आवश्यकताके ऊपर भी खूब जोर देना चाहिये। छोटे-छोटे बच्चोंको सौंदर्यकी अभीप्सा होनी चाहिये, इसलिये नहीं कि दूसरे उससे प्रसन्न होंगे या उससे उनका नाम होगा, बल्कि स्वयं सौंदर्यके प्रेमके लिये सौंदर्यकी चाह होनी चाहिये। क्योंकि सौंदर्य वह आदर्श है जिसे भौतिक जीवनमें सिद्ध करना है। प्रत्येक मनुष्यके अंदर यह संभावना निहित है कि वह अपने शरीरके विभिन्न भागोंमें कार्य करते समय शरीरकी विभिन्न गतियोंमें सामंजस्य स्थापित करे। मनुष्यका शरीर, यदि वह अपने जीवनके आरंभसे ही शरीर-चर्याकी किसी युक्तिपूर्ण पद्धतिका अनुसरण करे तो वह अपना सामंजस्य साधित कर सकता है और इस तरह सौंदर्य अभिव्यक्त करनेके योग्य हो सकता है। जब हम सर्वांगपूर्ण शिक्षाके अन्यान्य पहलुओंकी चर्चा करेंगे तब हम देखेंगे कि एक दिन यदि इस सौंदर्यको अभिव्यक्त होना है तो उसके लिये हमें किन भीतरी शर्त्तोंको पूरा करना होगा।

अबतक मैंने केवल बच्चोंको दी जानेवाली शिक्षाकी बात कही है; क्योंकि, उचित समयपर दिये जानेवाले उन्नत शारीरिक शिक्षणके द्वारा बहुत-से शारीरिक दोषोंको, कुरूपताओंको दूर किया जा सकता है। पर, अगर किसी कारणवश, किसीको यह शिक्षा बचपनमें न दी गयी हो तो इसका आरंभ किसी भी उम्रमें किया जा सकता है और फिर सारे जीवन इसका अनुसरण किया जा सकता है। परंतु जितनी ही देरसे हम आरंभ करेंगे उतना ही अधिक हमें बुरी आदतोंका मुकाबला करने, उन्हें सुधारने, जड़ता-कठोरताको दूर कर कोमलता-नमनीयता लाने, और विकृत अंगोंको दुरुस्त करनेके लिये तैयार रहना होगा। इस तैयारीके कामके लिये बहुत अधिक धैर्य और लगनकी आवश्यकता होगी और तब कहीं वह अवस्था आयगी जब हम शरीरके आकार और उसकी गतियोंमें सामंजस्य स्थापित करनेके

लिये किसी क्रियात्मक प्रोग्रामको आरंभ कर सकेंगे। परंतु जिस सौंदर्यको प्राप्त करना है उसके जीवंत आदर्शको अगर तुम अपने अंदर धारण करो तो अपने लक्ष्यपर पहुंचना तुम्हारे लिये सुनिश्चित है।

प्राणकी शिक्षा

सब प्रकारकी शिक्षाओंमें संभवतः प्राणकी शिक्षा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक आवश्यक है। फिर भी इसका ज्ञानपूर्वक तथा विधिवत् आरंभ और अनुसरण बहुत कम लोग करते हैं। इसके कई कारण हैं; सबसे पहले इस विशेष विषयका जिन बातोंसे संबंध है उनके स्वरूपके विषयमें मानव-बुद्धिको कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं है; दूसरे, यह कार्य बड़ा ही कठिन है और इसमें सफलता प्राप्त करनेके लिये हमारे अंदर सहनशीलता, अनंत अध्यवसाय और सुदृढ़ संकल्प होने आवश्यक हैं।

निःसंदेह, मनुष्यकी प्रकृतिमें प्राण एक स्वेच्छाचारी और जोर-जबर्दस्ती करनेवाला अत्याचारी है। और, क्योंकि इसमें बल-वीर्य, शक्ति-सामर्थ्य, उत्साह और अमोघ क्रियाशीलता निहित है, बहुत-से लोग इसके प्रति भयमिश्रित सम्मानका भाव रखते हैं और इसे सदा प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते हैं। परंतु यह एक ऐसा मालिक है जो किसी चीजसे संतुष्ट नहीं होता, इसकी मांगोंकी कोई सीमा नहीं। दो भावनाएं, जो बहुत प्रचलित हैं, विशेषकर पश्चिममें, इसके प्रभुत्वको और भी अधिक सुदृढ़ बनानेमें सहायता कर रही हैं, एक, कि जीवनका लक्ष्य सुखी होना है; दूसरी, कि तुम एक विशिष्ट स्वभाव लेकर उत्पन्न हुए हो और उसे बदलना असंभव है।

पहली भावना एक बहुत गभीर सत्यकी बीभत्स विकृति है: वह सत्य यह है कि जो कुछ भी है वह सत्ताके आनंदपर आधारित है और सत्ताके आनंदके बिना जीवनका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। परंतु सत्ताका यह जो आनंद है, जो भगवान्‌का एक गुण है और इसलिये किसी भी शर्त्तसे बंधा नहीं है, उसे जीवनमें सुखकी खोजके साथ मिला-जुला नहीं देना चाहिये; क्योंकि यह तो अधिकांशमें

परिस्थितियोंपर निर्भर करती है। जो दृढ़ विचार हमें यह विश्वास प्रदान करता है कि हमें सुखी होनेका अधिकार है, वह स्वभावतः ही हमें अपना जीवन हर अवस्थामें अपनी इच्छाके अनुसार बितानेकी ओर ले जाता है। यह मनोभाव अपने अंधकारपूर्ण और आक्रमण-कारी अहंभावके कारण सब प्रकारका विरोध और दुख-कष्ट, धोखा और अनुत्साह तथा अंतमें प्रायः भयंकर हानि पैदा करता है।

वास्तवमें जगत् जैसा है, इसमें जीवनका लक्ष्य व्यक्तिगत सुख प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्तिको उत्तरोत्तर सत्य-चैतन्यके प्रति जागृत करना है।

दूसरी भावना इस बातसे उत्पन्न होती है कि स्वभावमें कोई मूलगत परिवर्तन ले आनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी अवचेतनाके ऊपर लगभग पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करे, और साथ ही निश्चेतनासे जो कुछ भी उठता है—जो, सामान्य प्रकृतियोंमें, वंशानुक्रमके या जिस पारिपार्श्विक अवस्थामें मनुष्य जन्मा होता है उसके परिणामोंका प्रकाश होता है—उसे बड़ी कठोरतापूर्वक संयमित करे। पर यह भगीरथ कार्य केवल चेतनाकी प्रायः असामान्य वृद्धि तथा भगवत्कृपाकी निरंतर सहायताके द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस कार्यका प्रयास बहुत कम ही किया गया है; बहुत-से विख्यात गुरुओंने इसे असाध्य और आकाश-कुसुम ही घोषित किया है। फिर भी यह असाध्य नहीं है। सच पूछा जाय तो स्वभावका रूपांतर सिद्ध किया जा चुका है एक स्पष्टदर्शी साधना और अध्यवसायके द्वारा जो इतना दृढ़ होता है कि कोई भी चीज, यहांतक कि अत्यंत स्थायी असफलताएं भी, उसे निरुत्साहित नहीं कर सकतीं।

इसके लिये अत्यंत आवश्यक प्रारंभ यह है कि मनुष्य उस स्वभावका पूरे ब्योरेके साथ और पूर्ण रूपसे निरीक्षण करे जिसे कि रूपांतरित करना है। अनेक मनुष्योंके लिये, स्वयं यह कार्य भी बड़ा कठिन और प्रायः चकरा देनेवाला होता है। परंतु एक बात

है जिसे प्राचीन परंपराएं जानती थीं और जो आंतर अन्वेषणकी भूलभुलैयाके अंदर प्रथप्रदर्शक सूत्रका कार्य कर सकती थी। वह यह कि प्रत्येक मनुष्यके अंदर काफी मात्रामें, और विशिष्ट व्यक्तिमें कहीं अधिक सुनिश्चितताके साथ, स्वभावकी दो विरोधी प्रवृत्तियां होती हैं, जो प्रायः समान अनुपातमें और एक ही चीजकी प्रकाशित आकृति और छायाके समान होती हैं। इसी कारण जो मनुष्य असाधारण रूपमें उदार होनेकी क्षमता रखता है वही अकस्मात् देखता है कि उसकी प्रकृतिमें एक तरहकी कठोर कंजूसी घुस आयी है; साहसी मनुष्य कहींपर डरपोक बन जाता है और भला मनुष्य सहसा बुरी प्रवृत्तियां ग्रहण कर लेता है। मालूम होता है कि जीवन प्रत्येक व्यक्तिको एक आदर्शकी अभिव्यक्तिकी संभावनाके साथ-साथ उसके विरोधी तत्त्व भी प्रदान करता है। ये तत्त्व उसे ठोस रूपमें दिखा देते हैं कि, सिद्धिको सुलभ बनानेके लिये, वह कौन-सा युद्ध है जो उसे लड़ना है और वह कौनसी विजय है जो उसे प्राप्त करनी है। इस तरह देखनेसे, समूचा जीवन ही एक शिक्षा-क्रम है जो कम या अधिक सचेतन रूपमें, कम या अधिक स्वेच्छा-पूर्वक चलता रहता है। कुछ व्यक्तियोंमें यह शिक्षा प्रकाशको प्रकट करनेवाली क्रियाओंको सहायता पहुंचाती है, दूसरोंमें इसके विपरीत छायाको प्रकट करनेवाली क्रियाओंको। अगर परिस्थितियां और पारिपार्श्विक अवस्था अनुकूल हो तो छायाको हानि पहुंचाकर प्रकाश बढ़ता है; अन्यथा इसके विपरीत घटित होता है। अतएव व्यक्तिका स्वभाव गठित होता है प्रकृतिकी मनमौजके अनुसार और भौतिक तथा प्राणिक जीवनके कठोर नियमोंके अधीन, यदि एक उच्चतर तत्त्वका, एक सज्ञान संकल्पशक्तिका ज्योतिर्मय हस्तक्षेप न हो जो प्रकृतिको अपनी मनमौजी प्रक्रियाका अनुसरण नहीं करने देती बल्कि उसके स्थानमें एक युक्तिसंगत और स्पष्टदर्शी साधनाको ला बैठाती है। हम जब शिक्षाकी युक्तिपूर्ण पद्धतिकी बात कहते हैं तब हमारा मतलब इस सज्ञान संकल्पशक्तिसे ही होता है।

इसी कारण यह अत्यंत आवश्यक है कि बच्चेकी प्राणकी शिक्षा यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र, निःसंदेह, ज्यों ही वह अपनी इन्द्रियोंका व्यवहार करनेके योग्य हो जाय त्यों ही आरंभ हो जानी चाहिये। इस तरह वह बहुत-सी बुरी आदतोंसे बच जायगा और हानिकारक प्रभावोंको दूर कर सकेगा।

प्राणकी शिक्षाके दो प्रधान रूप हैं। वे दोनों ही लक्ष्य और पद्धतिकी दृष्टिसे एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं, पर हैं दोनों ही एक समान महत्त्वपूर्ण। पहला इन्द्रियोंके विकास और उनके उपयोगसे संबंध रखता है और दूसरा है अपने चरित्रके विषयमें सचेतन होना और धीरे-धीरे उसपर प्रभुत्व स्थापित कर अंतमें उसका रूपांतर साधित करना।

फिर इन्द्रियोंकी शिक्षाके भी कई रूप है; जैसे-जैसे सत्ता वर्द्धित होती है वैसे-वैसे वे रूप एक दूसरेके साथ जुड़ते चले जाते हैं; निश्चय ही यह शिक्षा बंद कभी भी नहीं होनी चाहिये। इन्द्रियोंको इस प्रकार सुशिक्षित किया जा सकता है कि वे अपनी क्रियामें, साधारणतया उनसे जैसी आशा की जाती है उससे बहुत अधिक निर्दोषता और शक्ति प्राप्त कर सकें।

किसी प्राचीन गुह्य ज्ञानने घोषणा की थी कि मनुष्य जिन इंद्रियोंको विकसित कर सकता है उनकी संख्या पांच नहीं बल्कि सात है और कुछ विशेष क्षेत्रोंमें बारहतक है। विभिन्न जातियोंने विभिन्न युगोंमें इन अतिरिक्त इंद्रियोंमेंसे किसीको कम या अधिक पूर्णताके साथ आवश्यकतावश विकसित किया था। अगर एक समुचित साधनाका लगातार अनुसरण किया जाय तो जो लोग सच्चे दिलसे इनके विकास तथा उसके परिणामोंमें रुचि रखते हैं वे सभी इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, जिन अनेक शक्तियोंकी लोग प्रायः ही चर्चा किया करते हैं, उनमेंसे एक है — अपनी शारीर चेतनाको विस्तारित कर देना, अपनेसे बाहर इस प्रकार फैला देना कि उसे किसी एक निश्चित बिंदुपर एकाग्र किया जा सके। और

इस तरह दूरकी चीजोंको देखा, सुना, सूंघा, चखा और यहांतक कि छुआ जा सके।

इंद्रियों और उनके व्यापारकी सामान्य शिक्षाके साथ ही यथा-शीघ्र विवेक और सौंदर्यबोध—अर्थात् जो कुछ सुन्दर और सामंजस्य-पूर्ण है, सरल, स्वस्थ और शुद्ध है उसे चुन लेने और ग्रहण करनेकी क्षमता, — के विकासकी शिक्षा भी देनी होगी। क्योंकि, शारीरिक स्वास्थ्यके समान ही मानसिक स्वास्थ्य भी होता है, जिस तरह शरीर और उसकी गतियोंका एक सौंदर्य है, उसी तरह इन्द्रियानुभवोंका भी एक सौंदर्य और सामंजस्य है। जैसे-जैसे बच्चेकी सामर्थ्य और समझ बढ़े वैसे-वैसे उसे अध्ययन कालमें ही यह सिखाना चाहिये कि वह शक्ति और यथार्थताके साथ-साथ सौंदर्यविषयक सुरुचि और सूक्ष्म वृत्तिका भी विकास करे। उसे सुन्दर, उच्च, स्वस्थ और महत् चीजें, चाहे वे प्रकृतिमें हों या मानवसृष्टिमें, दिखानी होंगी, उन्हें पसंद करना और उनसे प्रेम करना सिखाना होगा। वह एक सच्चा सौंदर्यानुशीलन होना चाहिये और वह पतनकारी प्रभावोंसे उसकी रक्षा करेगा। मालूम होता है कि गत महायुद्धोंके तुरंत बाद और उन द्वारा उद्दीपित भयानक स्नायविक उत्तेजनाके फलस्वरूप, मानों मानव सभ्यताके पतन और समाजव्यवस्थाके भंग होनेके चिह्नके रूपमें, एक प्रकारकी वर्द्धमान नीचताने मनुष्यजीवनको, व्यक्तिगत रूपसे और सामूहिक रूपसे भी, अधिकृत कर लिया है, विशेषकर सौंदर्य-लक्षी जीवन और इंद्रियोंके जीवनके स्तरमें। अगर इन्द्रियोंका विधिवत् तथा ज्ञानपूर्वक संस्कार किया जाय तो, बच्चेमें संसर्गदोष-के कारण जो निकृष्ट, सामान्य और असंस्कृत चीजें आ गयी हैं वे धीरे-धीरे दूर की जा सकती हैं; और साथ ही यह संस्कार उसके चरित्रपर भी सुखद प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करेगा। क्योंकि जिस व्यक्ति-ने सचमुचमें एक समुन्नत रुचि विकसित की है वह, स्वयं उस सुरुचि-के कारण ही, भद्दे, बर्बर या हीन ढंगसे कार्य करनेमें अपनेको असमर्थ अनुभव करेगा। यह सुरुचि, अगर यह सच्ची हो तो, व्यक्तिके अंदर

एक प्रकारकी महानता और उदारता ले आयेगी जो उसके कार्य करने-की पद्धितिमें सहज-स्वाभाविक ढंगसे प्रकट होंगी और उसे वहुत-सी नीच और उल्टी क्रियाओंसे अलग रखेंगी।

इससे स्वभावतः ही हम प्राणकी शिक्षाके दूसरे पहलूपर पहुंच गये हैं, उस पहलूपर जिसका संवंध चरित्र और उसके रूपांतरसे है।

साधारणतया, साधनाकी जो विधियां प्राण, उसकी शुद्धि और उसपर प्रभुत्वप्राप्तिसे संवंध रखती हैं वे दमन, संयम, त्याग और संन्यासके द्वारा अग्रसर होती हैं। यह प्रक्रिया निश्चय ही अधिक आसान और शीघ्र फल देनेवाली है, यद्यपि गभीरतर दृष्टिसे देखनेपर सच्ची और सांगोपांग शिक्षाकी अपेक्षा कम टिकाऊ और कार्यकरी है। इसके अतिरिक्त यह प्राणके हस्तक्षेप, सहायता और सहयोग-की समस्त संभावनाको ही वहिष्कृत कर देती है। परंतु, यदि कोई व्यक्तिका और उसके कार्यका सर्वांगीण विकास करना चाहता हो तो प्राणकी यह सहायता प्राप्त करनी अत्यंत आवश्यक है।

अपने अंदरकी वहुत-सी क्रियाओंके विषयमें सचेतन होना, यह देखना कि हम क्या करते हैं और क्यों करते हैं अत्यंत आवश्यक प्रारंभ है। वच्चेको सिखाना चाहिये कि वह आत्मनिरीक्षण करे, अपनी प्रतिक्रियाओं तथा आवेगों और उनके कारणोंको समझे, अपनी वासनाओंका, उग्रता और उत्तेजनाकी अपनी क्रियाओंका, अधिकार जमाने, अपने उपयोगमें लाने और शासन करनेकी सहजप्रेरणाका तथा मिथ्याभिमानरूपी आधारभूमिका — जिसपर ये चेष्टाएं अपनी परिपूरक दुर्वलता, अनुत्साह, अवसाद और निराशाके साथ स्थित होती हैं — स्पष्टदर्शी साक्षी वने।

स्पष्ट ही यह प्रक्रिया तभी लाभदायक होगी जव कि निरीक्षण करनेकी शक्ति वढ़नेके साथ-साथ प्रगति करने और पूर्णता पानेका संकल्प भी वढ़ता जाय। ज्योंही वच्चा इस संकल्पको धारण करनेकी योग्यता प्राप्त कर ले त्यों ही, अर्थात् साधारण विश्वासके विपरीत वहुत कम उम्रमें ही यह उसके अंदर भर देना चाहिये।

प्रभुत्व और विजय-प्राप्तिके इस संकल्पको जागृत करनेकी विधियां विभिन्न व्यक्तियोंके लिये विभिन्न प्रकारकी होती हैं। कुछ व्यक्तियोंके लिये युक्तिपूर्ण तर्क सफल होता है, दूसरोंके लिये भावुकता और शुभ कामनाको व्यवहारमें लाना पड़ता है, फिर अन्योंके लिये मर्यादा और आत्मसम्मानका भाव ही पर्याप्त होता है। परंतु सभी लोगोंके लिये अत्यंत शक्तिशाली उपाय है—उनके सामने निरंतर और सच्चाईके साथ दृष्टांत उपस्थित करना।

अगर एक बार संकल्प दृढ़तासे स्थापित हो जाय तो फिर विशेष कुछ करना नहीं रह जाता—बस इतना ही पर्याप्त है कि सच्चाई और लगनके साथ मनुष्य आगे बढ़ता जाय और हारको कभी अंतिम चीज न मान बैठे। अगर तुम समस्त दुर्बलता और पीछे हटनेसे बचना चाहो तो एक महत्त्वपूर्ण बात तुम्हें अवश्य जाननी चाहिये; और उसे कभी भूलना नहीं चाहिये: मनुष्य अपने संकल्पको अपनी मांस-पेशियोंकी ही तरह विधिबद्ध और वर्द्धमान अभ्यासोंके द्वारा उन्नत और विकसित कर सकता है। जो चीज तुम्हें महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती उसके लिये भी अधिक-से-अधिक प्रयास अपने संकल्पसे मांगनेमें तुम्हें हिचकिचाना नहीं चाहिये; क्योंकि प्रयासके द्वारा ही क्षमता बढ़ती है, उसे अत्यंत कठिन कार्योंमें भी व्यवहृत करनेकी शक्ति धीरे-धीरे प्राप्त होती है। जो कुछ करनेका निर्णय तुमने किया है वह तुम्हें अवश्य करना चाहिये चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय, यहांतक कि चाहे तुम्हें कितनी ही बार नए सिरेसे अपना प्रयास क्यों न आरंभ करना पड़े। प्रयासके द्वारा तुम्हारा संकल्प सुदृढ़ होगा और अंतमें तुम्हें इससे अधिक कुछ भी नहीं करना पड़ेगा कि तुम स्पष्ट दृष्टिसे वह लक्ष्य चुन लो जिसके लिये तुम इसका व्यवहार करोगे।

सार-रूपमें कह सकते हैं—हमें अपने स्वभावका पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और फिर अपनी क्रियाओंपर ऐसा संयम प्राप्त करना चाहिये कि हमें पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाय और जिन चीजोंको रूपांतरित करना है उनका रूपांतर साधित हो जाय।

अब, बाकी सब कुछ निर्भर करता है उस आदर्शपर जिसे प्रभुत्व और रूपांतरके प्रयासके द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा की जाती है। प्रयास और उसके फलका मूल्य उस आदर्शके मूल्यपर निर्भर करेगा। इस विषयकी चर्चा हम मनकी शिक्षाके संबंधमें आलोचना करते हुए अपने अगले लेखमें करेंगे।

मनकी शिक्षा

सब प्रकारकी शिक्षाओंमें सबसे अधिक प्रचलित है मनकी शिक्षा। तो भी, कुछ एक अपवादोंको छोड़कर, साधारणतः इसमें ऐसे छिद्र रह जाते हैं जो इसे बहुत ही अपूर्ण और अंतमें एकदम निरर्थक बना देते हैं।

मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि शिक्षाका अर्थ लोग समझते हैं मनकी आवश्यकीय शिक्षा। बच्चेको कुछ वर्ष एक कठोर शिक्षा-पद्धतिके अनुसार शिक्षा दे चुकनेपर, जो उसके मस्तिष्कको प्रबुद्ध करनेकी अपेक्षा कहीं अधिक उसमें ज्ञान-समग्रीको ठूंस देती है, हम समझ लेते हैं कि उसके मानसिक विकासके लिये जो कुछ करना आवश्यक था वह पूरा हो गया। पर बात ऐसी नहीं है। अगर शिक्षा समुचित मात्रामें और विचार-विवेकके साथ दी भी जाती है और वह मस्तिष्कको कोई हानि नहीं भी पहुंचाती तो भी वह मानव मनको वे सब क्षमताएं नहीं दे पाती जो उसे एक अच्छा और उपयोगी यंत्र बनानेके लिये आवश्यक हैं। साधारणतया जो शिक्षा बच्चोंको दी जाती है वह, अधिक-से-अधिक, शारीरिक व्यायामकी तरह मस्तिष्ककी नमनीयताको बढ़ा सकती है। इस दृष्टिकोणसे देखें तो, मानवी विद्याकी प्रत्येक शाखा ही एक विशेष प्रकारका मानसिक व्यायाम होती है, और इन सब शाखा-प्रशाखाओंमेंसे प्रत्येकके अंदर जिस शब्दावलिका प्रयोग किया जाता है वह उस शाखाकी अपनी विशेष और सुनिश्चित भाषा होती है।

मनकी सच्ची शिक्षाके, उस शिक्षाके जो मनुष्यको एक उच्चतर जीवनके लिये तैयार करेगी पांच प्रधान अंग हैं। साधारणतया ये अंग एकके बाद एक आते हैं, पर विशेष-विशेष व्यक्तियोंमें वे बदल-

बदलकर या एक साथ भी आ सकते हैं। वे पांचों अंग, संक्षेपमें, इस प्रकार हैं:

(१) एकाग्रताकी शक्तिका, सजग होनेकी क्षमताका विकास करना।

(२) मनको व्यापक, विशाल, बहुविध और समृद्ध बनानेकी क्षमताएं विकसित करना।

(३) जो केंद्रीय विचार या उच्चतर आदर्श या परमोज्ज्वल भावना जीवनमें पथप्रदर्शकका काम करेगी उसे केंद्र बनाकर समस्त विचारोंको सुसंगठित-सुव्यवस्थित करना।

(४) विचारोंको संयमित करना, अनिष्ट विचारोंका त्याग करना जिससे मनुष्य अंतमें जो कुछ चाहे वही और जब चाहे तभी विचार कर सके।

(५) मानसिक निश्चलताका, परिपूर्ण शांतिका और सत्ताके उच्चतर क्षेत्रोंसे आनेवाली अंतःप्रेरणाओंको अधिकाधिक पूर्णताके साथ ग्रहण करनेकी क्षमताका विकास करना।

शिक्षाके इन अंगोंको कार्यान्वित करनेके लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये जिन पद्धतियोंका व्यवहार किया जा सकता है उन सबका पूरा ब्योरा देना तो यहां संभव नहीं है, पर फिर भी कुछ व्याख्यात्मक सूचनाएं दी जा सकती हैं।

यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि बच्चेकी मानसिक उन्नतिको जो चीज सबसे अधिक बाधा पहुंचाती है वह है उसके विचारोंका निरंतर विक्षिप्त होते रहना। बालकका विचार तितली-की तरह इधर-उधर उड़ता रहता है और उसे एकाग्र करनेके लिये उसे अपनी ओरसे महान् प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। और फिर भी यह क्षमता उसमें गुप्त रूपसे विद्यमान है। क्योंकि जब तुम किसी चीजमें उसकी दिलचस्पी पैदा कर पाते हो तब वह काफी हदतक ध्यान जमानेमें समर्थ हो जाता है। अतएव यह शिक्षककी चतुराईपर निर्भर करता है कि वह धीरे-धीरे बच्चेके अंदर ध्यान

जमानेके लिये निरंतर एक समान प्रयास करने और कोई कार्य करते समय उसमें अधिकाधिक पूर्णताके साथ डूब जानेकी क्षमता और योग्यता पैदा करे। ध्यान एकाग्र करनेकी इस क्षमताको विकसित करनेवाले सभी साधन अच्छे हैं; आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार खेलसे आरंभ कर पारितोषिकतक सभी काममें लाये जा सकते हैं। पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण चीज है मनोवैज्ञानिक क्रिया। सर्वप्रधान साधन यह है कि जो चीज हम बच्चेको सिखाना चाहते हैं उसमें उसकी दिलचस्पी उत्पन्न कर दें, कार्य करनेकी रुचि, उन्नति करनेकी इच्छा जगा दें। बच्चेको देने योग्य सबसे मूल्यवान् उपहार यही है कि हम उसमें सीखनेका अनुराग, सर्वदा और सर्वत्र सीखनेका अनुराग पैदा कर दें। उसके लिये जीवनकी सभी परिस्थितियां, सभी घटनाएं अधिक और सदा अधिकाधिक सीखते रहनेके लिये नित्य नवीन अवसर बन जायं।

इसके लिये सजगता और एकाग्रताके अतिरिक्त निरीक्षण, यथार्थ अंकन तथा विश्वस्त स्मरणकी शक्ति भी पैदा करनी चाहिये। निरीक्षणकी क्षमताका विकास विभिन्न प्रकारके और स्वाभाविक अभ्यासोंके द्वारा, बच्चेके विचारको सजग, सतर्क और स्फूर्तिमान् बनाये रखनेमें सहायता देनेवाले सभी सुअवसरोंका उपयोग करके किया जा सकता है। स्मरण-शक्तिकी अपेक्षा उसकी बोध-शक्तिको बढ़ानेपर बहुत अधिक बल देना चाहिये। मनुष्य केवल वही कुछ जानता है जिसे वह समझता है। जो चीज मनुष्य यंत्रकी तरह रट लेता है वह धीरे-धीरे धुंधली होती जाती है और अंतमें विलीन हो जाती है। जो कुछ तुम समझ जाते हो उसे तुम कभी नहीं भूलते। कोई भी चीज कैसे और क्यों होती है यह बच्चेको समझानेमें तुम्हें कभी आनाकानी नहीं करनी चाहिये। अगर तुम स्वयं न समझा सको तो तुम्हें उसे किसी ऐसे व्यक्तिके पास भेज देना चाहिये जो उसका उत्तर देने योग्य ज्ञान रखता हो अथवा उस प्रश्नसे संबंध रखनेवाली पुस्तकें दे देनी चाहियें। बस इसी तरह तुम धीरे-धीरे बच्चेमें

सच्चे अध्ययनकी रुचि तथा ज्ञानप्राप्तिके लिये अथक प्रयत्न करनेकी आदत जगा सकते हो।

इस तरह स्वभावतः ही हम विकासके दूसरे स्तरमें आ जायेंगे जहांपर मन अपनेको विस्तारित और समृद्ध बनायेगा।

जैसे-जैसे बच्चा उन्नति करे वैसे-वैसे तुम उसे यह दिखलाओगे कि किस प्रकार प्रत्येक चीज अध्ययनका सुन्दर विषय बन सकती है बशर्तें कि प्रश्नपर ठीक ढंगसे विचार किया जाय। प्रत्येक दिन, प्रत्येक मुहूर्त्तका जीवन समस्त पाठशालाओंसे बढ़कर होता है; वह होता है बहुविध और जटिल, अदृष्टपूर्व अनुभवोंसे, समाधानके लिये प्रस्तुत समस्याओंसे, स्पष्ट और प्रभावक उदाहरणोंसे तथा प्रत्यक्ष परिणामोंसे भरा-पूरा। अगर तुम बच्चोंके पूछे हुए असंख्य प्रश्नोंका बुद्धिमानी तथा स्पष्टताके साथ उत्तर दे सको तो उनमें बड़ी आसानीसे एक स्वस्थ-सुन्दर खोजकी वृत्ति जगायी जा सकती है। कोई भी मजेदार उत्तर अपनी शृंखलामें अन्यान्य चीजोंको खींच ले आता है और बच्चा, अपना ध्यान आकृष्ट होनेके कारण बिना किसी प्रयासके ही बहुत अधिक, पाठशालामें बैठकर साधारणतया जो कुछ सीखता है उससे बहुत अधिक सीख जाता है। सावधानी तथा बुद्धिमानीके साथ पुस्तकोंका चुनाव करनेसे भी बच्चेमें लाभदायी चीजें पढ़नेकी रुचि उत्पन्न होती है जो कि एक साथ ही शिक्षाप्रद और आकर्षक होती हैं। फिर तुम्हें ऐसी किसी चीजसे डरना नहीं चाहिये जो बच्चेकी कल्पनाशक्तिको जगाती और संतुष्ट करती है: वास्तवमें कल्पना ही वह चीज है जो सर्जनशील मानसिक वृत्तिको विकसित करती है तथा यही वह चीज है जो अध्ययनको एक सजीव वस्तु बना देती है और जिससे मन आनंदके साथ वर्द्धित होता है।

मनकी नमनीयता और विशालता बढ़ानेके लिये हमें केवल अनेक और बहुविध विषयोंके अध्ययनकी ओर ही नहीं बल्कि विशेषकर एक ही विषयपर विभिन्न दिशाओंसे विचार करनेकी ओर ध्यान देना चाहिये। ऐसा करनेसे बालक व्यावहारिक तरीकेसे यह समझ

जायगा कि एक ही बौद्धिक समस्याका सामना, निपटारा तथा समाधान करनेके बहुतेरे रास्ते हैं। इस तरह उसका मस्तिष्क सब प्रकारकी कठोरताओंसे मुक्त हो जायगा और साथ-ही-साथ, उसकी चिंतनशक्ति अधिक समृद्ध तथा नमनीय हो जायगी और कहीं अधिक बहुमुख एवं व्यापक समन्वयके लिये तैयार हो जायगी। इस तरीकेसे बच्चेमें यह भाव भी भरा जा सकता है कि मानसिक ज्ञान अत्यंत आपेक्षिक वस्तु है और फिर धीरे-धीरे ज्ञानके एक अधिक सच्चे उद्‌गमके लिये उसमें अभीप्सा जगायी जा सकती है।

निःसंदेह जैसे-जैसे बच्चा अपने अध्ययनमें अग्रसर होता है और उम्रमें बड़ा होता है, वैसे-वैसे उसका मन भी परिपक्व होता है और सामान्य भावनाओंको ग्रहण करनेमें अधिकाधिक सक्षम होता है; और फिर इसके साथ-साथ सदैव निश्चयात्मक भावकी आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है, एक ज्ञानकी आवश्यकता महसूस होती है जो इतना अधिक स्थायी हो कि उसे आधार बनाकर एक मानसिक रचना तैयार की जा सके — ऐसी रचना तैयार की जा सके जो मस्तिष्कमें एकत्र हुई सभी भिन्न और अस्तव्यस्त और बहुधा विरोधी भावनाओंको सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध करने दे। निश्चय ही, यदि हम अपने विचारोंकी अस्तव्यस्ततासे बचना चाहें तो उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध करना बहुत ही आवश्यक है। सभी विरोधी चीजें प्रतिपूरक चीजोंमें रूपांतरित हो सकती हैं; पर उसके लिये हमें एक ऐसी उच्चतर भावनाको ढूंढ़ निकालना होगा जो उन्हें सुसमंजस बनानेमें समर्थ हो। यह सदा ही अच्छा है कि सभी समस्याओंपर संभाव्य सभी दृष्टिकोणोंसे विचार किया जाय; इससे हम पक्षपात और संकीर्णतासे बच जाते हैं। पर अगर हमारे विचारको सक्रिय और सृष्टिक्षम होना हो तो उसे, प्रत्येक क्षेत्रमें, गृहीत सभी दृष्टिकोणोंका एक स्वाभाविक और युक्तिसंगत समन्वय होना चाहिये। अगर तुम्हें अपने सभी विचारोंको एक साथ शक्तिशाली तथा निर्माणकारी शक्तिका रूप देना हो तो तुम्हें अपने मानसिक समन्वयकी केंद्रीय भावनाको

चुननेमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये; क्योंकि उसीके ऊपर तुम्हारे समन्वयका मूल्य निर्भर करेगा। जितनी ही ऊंची और विशाल तुम्हारी केंद्रीय भावना होगी और जितनी ही अधिक वह विश्वजनीन होगी, काल और देशसे ऊपर उठी हुई होगी, उतनी ही बहुसंख्यक और जटिल भावनाओं, धारणाओं और विचारोंको वह सुव्यवस्थित और सुसमंजस बनानेमें समर्थ होगी।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि व्यवस्थित करनेका कार्य तुरत पूराका पूरा नहीं किया जा सकता। मनको, अगर उसे अपने बल और यौवनको बनाये रखना है, तो नित्य निरंतर उन्नत होना होगा, सभी नये-नये ज्ञानोंके प्रकाशमें अपनी मान्यताओंको सुधारते रहना होगा, नयी मान्यताओंको शामिल करनेके लिये अपने क्षेत्रको बढ़ाना होगा और इसके लिये अपने विचारोंको फिरसे श्रेणीबद्ध और सुसंगठित करना होगा जिससे कि उनमेंसे प्रत्येक विचारको, दूसरोंके साथ उसके संबंधको देखते हुए, अपना समुचित स्थान प्राप्त हो और इस तरह समूचा विचार-समुदाय सुसमंजस और सुव्यवस्थित हो जाय।

परंतु हमने अबतक जो कुछ कहा है वह सब चिंतनशील मनसे संबंध रखता है, उस मनसे संबंध रखता है जो ज्ञानार्जन करता है। पर ज्ञानार्जन मानसिक कार्यका केवल एक अंग है। कम-से-कम इतना ही प्रधान दूसरा अंग है रचनात्मक वृत्ति, रूप देनेकी क्षमता और इसलिये कार्यके लिये तैयारी करनेकी क्षमता। मानसिक कार्यके इस अंशको, यद्यपि यह है बहुत ही महत्त्वपूर्ण, बहुत कम लोगोंने ही विशेष अध्ययन या अनुशीलनका विषय बनाया है। केवल वही लोग जो किसी कारणवश अपनी मानसिक क्रियाओंपर कठोर नियंत्रण करना चाहते हैं, इस रचनात्मक वृत्तिका निरीक्षण और अनुशासन करनेकी बात सोचते हैं। और फिर, जब वे इसके लिये प्रयास करने लगते हैं तब ऐसी महान् कठिनाइयां उनके सामने खड़ी हो जाती हैं जो अलंघ्य प्रतीत होती हैं।

फिर भी मनकी इस रचनात्मिका क्रियाके ऊपर संयम स्थापित

करना आत्म-शिक्षणका अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। यहांतक कहा जा सकता है कि इसके विना किसी भी प्रकारका मानसिक प्रभुत्व पाना संभव नहीं। अध्ययनका जहांतक संबंध है, सभी विचार स्वीकार करने योग्य हैं और उन सबको उस समन्वयके अंदर ले आना चाहिये जिसका कार्य ही होगा अधिकाधिक समृद्ध और बहुविध होना; पर, कार्यका जहांतक संबंध है, बात इससे एकदम भिन्न होगी। जिन विचारोंको हम स्वीकार करेंगे उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये हमें उनपर कठोर संयम स्थापित करना होगा। हमारे मानसिक समन्वयके आधारभूत केंद्रीय विचारका साधारण झुकाव जिस ओर हो, उसीके साथ मेल खानेवाली भावनाओंको हमें कार्यरूपमें अभिव्यक्त होने देना चाहिये। इसका अर्थ होता है कि हमारी मानसिक चेतनामें जो भी विचार प्रवेश करे उसे हमें केंद्रीय भावनाके सामने ला रखना चाहिये; और अवतक एकत्र किये हुए विचारोंके बीचमें अगर उस विचारको अपना समुचित स्थान प्राप्त हो जाय तो उसे समन्वयके अंदर शामिल करना चाहिये; अगर उसे अपना समुचित स्थान प्राप्त न हो तो उसे बाहर फेंक देना चाहिये जिससे कि वह कार्यके ऊपर कोई भी प्रभाव न डाल सके। मानसिक पवित्रीकरणका यह कार्य खूब नियमित रूपसे करना चाहिये और तभी अपने कार्योंके ऊपर हमारा पूर्ण अधिकार सुरक्षित रह सकता है।

इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उत्तम यह है कि थोड़-सा समय दैनिक रूपमें नियत रखा जाय जब कि हम अपने विचारोंको चुपचाप देखें और अपने समन्वयके भीतर यथास्थान सजाकर रखें। एक वार जहां इस बातकी आदत पड़ गयी कि फिर तुम अपने विचारोंके ऊपर, कार्यादिके भीतर भी, संयम बनाये रख सकोगे और इस योग्य हो जाओगे कि जो कार्य तुम कर रहे हो उसके लिये जो विचार उपयोगी नहीं हैं उन्हें सामने न आने दो। विशेषकर, यदि सजगता और एकाग्रताकी शक्तिको निरंतर बढ़ाया जाय तो, हमारी बाह्य सक्रिय चेतना केवल उन्हीं विचारोंको आने देगी जिनकी आवश्यकता

होगी और तब वे सब-के-सब अधिक शक्तिसंपन्न और फलोत्पादक हो जायेंगे। अगर, एकाग्रता तीव्र हो जानेपर, यह आवश्यक हो कि चिंतन बिलकुल किया ही न जाय, तो समस्त मानसिक प्रकंपन बंद करके प्रायः पूर्ण निश्चल-नीरवता प्राप्त की जा सकती है। इस निश्चल-नीरवताके अंदर मनुष्य धीरे-धीरे उच्चतर मानस क्षेत्रोंकी ओर खुल सकता है और वहांसे जो अंतःप्रेरणाएं आती हैं उन्हें स्मरण रखना सीख सकता है।

परंतु इस अवस्थाके प्राप्त होनेसे पहले भी निश्चल-नीरवता अपने-आपमें अत्यंत उपयोगी चीज है। जिन लोगोंका मन कुछ विकसित और क्रियाशील होता है उनमेंसे अधिकांशका मन कभी शांत नहीं रहता। दिनके समय, उसकी क्रियापर एक प्रकारका संयम रहता है, पर रातके समय, शरीरकी निद्राकी अवस्थामें, जाग्रत् अवस्थाके संयमके प्रायः संपूर्ण रूपमें हट जानेपर, मन अत्यधिक क्रियाशील हो जाता है और उसकी सारी क्रियाएं बहुधा असंबद्ध होती हैं। इसके कारण मनपर एक प्रकारका जोर पड़ता है जो अंतमें थकावट ले आता है और मानसिक शक्तियोंको कम कर देता है।

असली बात यह है कि मानव सत्ताके अन्य सभी भागोंकी तरह मनको भी विश्रामकी आवश्यकता होती है और उसे यह विश्राम तब-तक नहीं मिल सकता जबतक कि हम यह न जान लें कि यह दिया कैसे जाता है। अपने मनको विश्राम देनेकी कला एक ऐसी चीज है जो हमें अवश्य आयत्त करनी चाहिये। मनको विश्राम देनेका एक तरीका है मनके कार्यको बदलते रहना; परंतु सबसे अधिक विश्रामकी संभावना विद्यमान है निश्चल-नीरवताके अंदर। जहांतक मानसिक वृत्तियोंका संबंध है, निश्चल-नीरवताकी शांतिमें कुछ मिनट बितानेका अर्थ होता है घंटों सोनेकी अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायी विश्राम लेना।

जब हम अपनी इच्छानुसार मनको निश्चल-नीरव बनाना और ग्रहणशील निश्चल-नीरवतामें उसे एकाग्र करना सीख जायंगे तब

ऐसी कोई समस्या नहीं रह जायगी जिसे हम हल न कर सकें, कोई ऐसी मानसिक कठिनाई नहीं रह जायगी जिसका कोई समाधान न प्राप्त हो जाय। जब विचार चंचल होता है तब वह अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो जाता है; सजग शांतिके अंदर ही ज्योति प्रकट हो सकती है और मनुष्यकी क्षमताओंके नवीन क्षेत्रोंको उन्मुक्त कर सकती है।

आंतरात्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा

अवतक हमारा विषय वह शिक्षा रही है जो संसारमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक वच्चेको दी जा सकती है और जो केवल मानवी क्षमताओंसे ही संबंध रखती है, परंतु हमें अनिवार्य रूपमें वहीं रुक जानेकी आवश्यकता नहीं। सव मानव प्राणियोंमें, अंदर छुपी हुई, एक महत्तर चेतनाकी संभावना मौजूद है जो उनके सामान्य जीवनकी सीमासे वड़ी है और जिसकी सहायतासे वे एक उच्चतर और अधिक व्यापक जीवनमें भाग लेनेके अधिकारी वन सकते हैं। वास्तवमें यही चेतना सभी असाधारण व्यक्तियोंमें जीवनको शासित करती है तथा उसकी परिस्थितियों, और साथ ही इन परिस्थितियोंके प्रति उनकी वैयक्तिक प्रतिक्रियाको भी व्यवस्थित करती है। जो बात मनुष्यका मन नहीं जानता और नहीं कर सकता उसे यह चेतना ज़ानती है और करती है। यह उस प्रकाशके समान है जो व्यक्तिके केंद्रमें चमक रहा है। इसकी किरण वाह्य चेतनाके मोटे आवरणोंमेंसे प्रसारित होती हैं। कुछ व्यक्तियोंको इसकी उपस्थितिका एक अस्पष्ट-सा भान रहता है। वहुतसे बच्चे भी इसके प्रभावके अधीन होते हैं जो कभी-कभी अत्यधिक स्पष्ट रूपसे उनकी सहज-प्रेरित क्रियाओं यहांतक कि उनके शब्दोंमें भी दृष्टिगोचर होता है। दुर्भाग्यवश माता-पिता वहुधा इसका अर्थ नहीं जानते और न ही यह समझते हैं कि उनके बच्चोंके अंदर कौन-सी क्रिया चल रही है। इसलिये इन घटनाओंकी और उनकी अपनी प्रतिक्रिया भी कोई अच्छी नहीं होती और उनकी सारी शिक्षाका अर्थ ही यह रह जाता है कि वह वच्चेको इस क्षेत्रमें यथासंभव अचेतन वना दे, उसका सारा ध्यान वाह्य वस्तुओंपर केंद्रित कर दे तथा उसमें इन्हींको महत्त्वपूर्ण

समझनेका अभ्यास डाल दे। वाह्य वस्तुओंपर ध्यान केंद्रित करना वहुत लाभदायक तो है पर यह कार्य उचित ढंगसे करना चाहिये। ये तीन प्रकारकी शिक्षाएं — शारीरिक, प्राणिक तथा मानसिक — इसीसे संवंधित हैं। हम कह सकते हैं कि ये शिक्षाएं व्यक्तित्वका निर्माण करने, मनुष्यको अस्पष्ट और अवचेतन जड़तासे उवारने तथा उसे एक सुनिश्चित और आत्मसचेतन सत्ता वनानेके साधन हैं। अंतरात्माकी शिक्षाके द्वारा हम जीवनके सच्चे आशय, पृथ्वीपर अपने अस्तित्वके कारण तथा जीवनकी खोजके लक्ष्य और उसके परिणाम — अपनी नित्य सत्ताके प्रति व्यक्तिके आत्मसमर्पण — के प्रश्नपर आते हैं। इस खोजका संवंध साधारणतया एक गुह्य भाव तथा धार्मिक जीवनसे है क्योंकि विशेष रूपसे धर्म-मत ही जीवनके इस पहलूमें व्यस्त रहे हैं। पर ऐसा होना आवश्यक नहीं। ईश्वर-विषयक गुह्य विचारके स्थानपर सत्यका अधिक दार्शनिक विचार आ सकता है पर फिर भी यह खोज सार-रूपमें वही रहेगी, केवल उस-तक पहुंचनेका मार्ग ऐसा हो जायगा कि अत्यधिक आग्रहशील प्रत्यक्ष-वादी भी इसको अपना सकेगा; क्योंकि आंतरात्मिक जीवनकी तैयारीके लिये मानसिक विचारों और धारणाओंका अधिक महत्व नहीं है। महत्त्वपूर्ण वात यह है कि अनुभवको जीवनमें लाया जाय, यह अनु-भव अपने-आपमें यथार्थ शक्तिशाली होता है, यह उन सव सिद्धांतोंसे स्वतंत्र है जो इसके पहले, इसके साथ या इसके पीछे आते हैं, क्योंकि अधिकतर ये सिद्धांत व्याख्या-रूप ही होते हैं जिसके द्वारा मनुष्यको कुछ-कुछ ज्ञानप्राप्तिका भ्रम हो जाता है। जिस आदर्श या पूर्ण सत्ताको मनुष्य प्राप्त करना चाहता है उसे वह उस वातावरणके अनुसार जिसमें वह उत्पन्न हुआ है और उस शिक्षाके अनुसार जो उसे प्राप्त हुई है, भिन्न-भिन्न नाम दे देता है। अगर अनुभव सच्चा हो तो वह सार-रूपमें समान ही रहता है। भेद केवल उन शब्दों और उक्तियोंमें है जिनमें उसका निरूपण होता है और यह होता है उस व्यक्तिके विश्वास और मानसिक शिक्षाके अनुसार जिसको यह

अनुभव प्राप्त हुआ है। यह निरूपण एक निकटवर्ती वर्णनमात्र है। जैसे-जैसे अनुभव अपने-आपमें अधिकाधिक यथार्थ और सुसंवद्ध होता जाय वैसे-वैसे इस निरूपणको भी उत्तरोत्तर विकसित तथा यथार्थ होते जाना चाहिये। फिर भी यदि हम आंतरात्मिक शिक्षाकी एक सामान्य रूपरेखा खींचना चाहें तो, अंतरात्मासे हमारा अभिप्राय क्या है इस विषयमें हमें कुछ विचार अवश्य वना लेना चाहिये चाहे वह विचार कितना ही सापेक्ष क्यों न हो। उदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्तिकी रचना उन असंख्य संभावनाओं-मेंसे किसी एकके देश और कालमें प्रक्षेपणके द्वारा होती है जो समस्त अभिव्यक्तिके सर्वोच्च उद्गममें गुप्त रूपसे विद्यमान हैं। यह उद्गम एकमेव विश्वव्यापी चेतनाके द्वारा व्यक्तिके नियम या सत्यमें मूर्त रूप धारण कर लेता है और इस प्रकार उत्तरोत्तर विकास करते हुए उसकी आत्मा या चैत्य पुरुष (अंतरात्मा) वन जाता है।

यह स्पष्ट है कि जो कुछ मैंने संक्षेपमें कहा है उसे न तो अंत-रात्माकी पूर्ण व्याख्या कहा जा सकता है और नहीं पूरेका पूरा विषय उसमें आ जाता है,—अभी वहुत कुछ बाकी है। यह एक अति संक्षिप्त निरूपणमात्र है और इसका उपयोग व्यवहार-रूपमें हो सकता है। यह उस शिक्षाका आधार वन सकती है जिसपर अव हमें विचार करना है।

आंतरात्मिक उपस्थितिके द्वारा ही व्यक्तिका सच्चा अस्तित्व व्यक्ति तथा उसके जीवनकी परिस्थितियोंसे संपर्क प्राप्त करता है। यह कहा जा सकता है कि अधिकांश व्यक्तियोंमें यह उपस्थिति अज्ञात और अपरिचित रूपमें पर्देके पीछेसे कार्य करती है। पर कुछमें यह अनुभवगोचर होती है तथा इसकी क्रियाको भी पहचाना जा सकता है; वहुत ही विरले लोगोंमें यह उपस्थिति प्रत्यक्ष रूपमें प्रकट होती है और इन्हींमें इसकी क्रिया भी अधिक प्रभावशाली होती है। ऐसे लोग ही एक विशेष विश्वास और निश्चयके साथ जीवनमें आगे बढ़ते हैं, ये ही अपने भाग्यके स्वामी होते हैं। इस स्वामित्वको प्राप्त

करने तथा अंतरात्माकी उपस्थितिके प्रति सचेतन होनेके लिये ही आंतरात्मिक शिक्षाके अनुशीलनकी जरूरत है, पर इसके लिये एक विशेष साधन अर्थात् व्यक्तिके निजी संकल्पका होना आवश्यक है। क्योंकि अभीतक अंतरात्माकी खोज, इसके साथ तदात्मता, शिक्षाके स्वीकृत विषयोंका अंग नहीं बनी है। कई ऐसी विशेष पुस्तकें हैं जिनमें इस विषयको सीखनेके लिये कुछ उपयोगी निर्देश मिल जाते हैं। किन्हीं विशेष अवस्थाओंमें कुछ भाग्यशाली लोगोंकी किसी ऐसे व्यक्तिसे भेंट भी हो सकती है जो उन्हें मार्ग दिखानेमें समर्थ होता है तथा इसपर चलनेके लिये उन्हें आवश्यक सहायता पहुंचा सकता है। पर अधिकतर यह कार्य मनुष्यको अपनी ही मौलिक प्रेरणाद्वारा करना होता है। यह खोज उसका व्यक्तिगत कार्य है तथा लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये एक महान् संकल्प, दृढ़ निश्चय और अथक अध्यवसायकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। ऐसा कहा जा सकता है कि प्रत्येकको अपनी कठिनाइयोंमेंसे अपना रास्ता आप निकालना होता है। कुछ हदतक तो इस लक्ष्यको लोग जानते हैं; क्योंकि जिन्होंने इसे प्राप्त कर लिया है उनमेंसे अधिकांश थोड़े-बहुत स्पष्ट रूपमें इसका वर्णन कर चुके हैं। पर इस खोजका सर्वोच्च महत्त्व इसकी सहज-स्वाभाविकता और सच्चाईमें है जो सामान्य मानसिक मर्यादाओंमें नहीं होती। इसीलिये जो कोई इस साहसपूर्ण कार्यका बीड़ा उठाना चाहता है वह पहले प्रायः एक ऐसे व्यक्तिकी खोज करता है जो इस कार्यको सफलतापूर्वक कर चुका होता है और साथ ही जो उसे सहारा देने और रास्ता दिखानेमें समर्थ है। तथापि कई ऐसे एकाकी जिज्ञासु भी होते हैं जिनके लिये कुछ सामान्य निर्देश उपयोगी हो सकते हैं। प्रारंभमें मनुष्यको अपने अंदर उस चीजकी खोज करनी होगी जो शरीर और जीवनकी परिस्थितियोंसे स्वतंत्र है, जिसका जन्म न तो उस मानसिक रचनासे हुआ है जो उसे प्राप्त हुई है, न उस भाषासे जो वह बोलता है, न उस वातावरणके अभ्यासों तथा रीति-रिवाजोंसे जिसमें वह रहता है और न ही उस देश या

युगसे जिसमें वह उत्पन्न हुआ है तथा जिससे उसका संबंध है। उसे अपनी सत्ताकी गहराईमें उस वस्तुको ढूंढ़ना होता है जिसके अंदर व्यापकता, असीम विस्तार तथा नित्य स्थिरताका भाव है। तब वह अपने-आपको केंद्रसे बाहरकी ओर प्रसारित करता है, विशाल और व्यापक बनाता है, प्रत्येक वस्तुमें तथा सब प्राणियोंमें निवास करने लगता है। व्यक्तियोंको एक-दूसरेसे पृथक् करनेवाली सीमाएं टूट जाती हैं; वह उनके विचारोंमें सोचता है, उनके संवेदनोंसे स्पंदित होता है, उनकी भावनाओंमें अनुभव करता है, सबके जीवनमें जीता है। जो जड़ प्रतीत होता था, वह एकाएक जीवनसे पूर्ण हो जाता है, पत्थर स्पंदित हो उठते हैं, पौधे संवेदन, इच्छा तथा दुःख अनुभव करने लगते हैं, पशु कुछ मूक-सी पर स्पष्ट और व्यंजक भाषामें बोलते हैं। सब वस्तुएं एक ऐसी अद्‌भुत चेतनासे सजीव हो उठती हैं जो देश और कालसे परे है। यह आंतरात्मिक उपलब्धिका केवल एक पक्ष है, इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से हैं। ये सब मिलकर तुम्हारे अहंभावकी सीमाओं तथा तुम्हारे बाह्य व्यक्तित्वकी दीवारोंसे, तुम्हारी प्रतिक्रियाओंकी असमर्थता और तुम्हारे संकल्पकी दुर्बलतासे तुम्हें बाहर निकाल लाते हैं।

पर जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, यहांतक पहुंचनेका मार्ग लंबा और कठिन है, इसमें अनेक जाल बिछे हैं तथा कठिनाइयां हैं और इनका सामना करनेके लिये एक ऐसे दृढ़ निश्चयकी आवश्यकता है जो सब प्रकारकी परीक्षाओंके सम्मुख टिक सके। यह एक अपरिचित प्रदेशकी, एक महान् ध्येयकी खोजके लिये अज्ञात वनमेंसे एक अन्वेषककी यात्राके समान है। अंतरात्माकी उपलब्धि भी एक महान् खोज है, इसके लिये उतनी ही निडरता और सहनशीलताकी आवश्यकता है जितनी कि हमें नए महाद्वीपोंकी खोजमें होती है। जिसने इस कामको हाथमें लेनेका निश्चय कर लिया है उसके लिये कई निर्देश उपयोगी हो सकते हैं: कुछ एक ये हैं —

पहली और शायद अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मन

आध्यात्मिक वस्तुओंके विषयमें राय बनानेमें असमर्थ है। जिन लोगोंने भी इस विषयपर लिखा है वे सब यही कहते हैं। पर बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इसपर आचरण करते हैं; फिर भी इस मार्गपर अग्रसर होनेके लिये सब प्रकारकी मानसिक धारणाओं और प्रतिक्रियाओंसे बचना सर्वथा अनिवार्य है।

आराम, सुखभोग या प्रसन्नताके लिये हर प्रकारकी वैयक्तिक कामनाका त्याग कर दो; बस उन्नतिके लिये एक प्रज्वलित अग्नि-शिखा बन जाओ। जो कुछ तुम्हारे मार्गमें आये उसे अपने विकास-के लिये सहायक मानो और तुरंत इस अपेक्षित विकासको साधित भी कर लो।

सब कार्य प्रसन्नतासे करनेका यत्न करो, परंतु प्रसन्नता कभी तुम्हारे कार्यका प्रेरक भाव न बनने पाये।

कभी भी उत्तेजित, उद्विग्न या विक्षुब्ध मत होओ। सब अवस्थाओंमें पूर्ण रूपसे शांत बने रहो। फिर भी सदा सजग रहो जिससे कि जो उन्नति तुम्हें करनी है उसे तुम जान सको तथा बिना समय नष्ट किये उसे प्राप्त कर सको।

भौतिक घटनाओंको उनके बाह्य रूपके आधारपर अंगीकार मत करो। ये सदा ही किसी अन्य वस्तुकी, जो सत्य वस्तु है परंतु जो हमारी तलीय बुद्धिकी पकड़में नहीं आती, अशुद्ध अभि-व्यक्ति होती हैं।

किसीके व्यवहारके प्रति शिकायत मत करो, जबतक तुम्हारे अंदर उसके स्वभावकी उस चीजको बदलनेकी शक्ति ही न हो जो उसे वैसा करनेको प्रेरित करती है; और अगर तुम्हारे पास वह शक्ति है तो शिकायत करनेके स्थानपर उसको बदल दो।

सब कुछ करते हुए तुम अपने लक्ष्यको सदा स्मरण रखो। इस महान् उपलब्धिकी खोजमें कोई भी चीज बड़ी या छोटी नहीं है। सब समान रूपसे महत्त्वपूर्ण हैं, ये इसकी सफलतामें सहायता भी पहुंचा सकती हैं और बाधा भी डाल सकती हैं, जैसे, भोजनसे पहले तुम

इस अभीप्सापर कुछ सेकिंड अपना ध्यान एकाग्र करो कि जो खाना तुम खाने लगे हो वह तुम्हारे शरीरके लिये उस प्रयोजनीय तत्त्वको पैदा करे जो इस महान् उपलब्धिके लिये तुम्हारे प्रयत्नका ठोस आधार बनेगा तथा उसे इस प्रयत्नमें सहनशीलता और अध्यवसाय-की शक्ति प्रदान करेगा।

सोनेसे पहले भी तुम कुछ सेकिंडके लिये एकाग्र होकर अभीप्सा करो कि यह निद्रा तुम्हारी थकी हुई नसोंको पुनः शक्ति प्रदान करे, तुम्हारे मस्तिष्कमें स्थिरता और शांति लाये, जिसमें कि सोकर उठने-के बाद तुम नये उत्साहके साथ इस महान् उपलब्धिकी ओर अपनी यात्राको फिरसे आरंभ कर सको।

कुछ भी करनेसे पहले इस इच्छाशक्तिपर अपना ध्यान केंद्रित करो कि तुम्हारा कार्य इस महान् उपलब्धिकी ओर अग्रसर होनेमें तुम्हें सहायता पहुंचाये, कम-से-कम बाधक तो न बने।

जब तुम बोलो, तो मुखसे शब्द निकालनेसे पहले कम-से-कम इतनी देर तो अपने-आपको एकाग्र कर लो जिससे कि तुम्हारा शब्दोंपर नियंत्रण रहे और वही शब्द मुखसे निकलें जो अनिवार्य रूपमें आवश्यक हैं, केवल वही जो इस महान् उपलब्धिकी ओर अग्रसर होनेमें किसी प्रकार भी बाधक नहीं हैं।

संक्षेपमें, अपने जीवनके प्रयोजन और लक्ष्यको कभी मत भूलो। इस महान् उपलब्धिका तुम्हारा संकल्प सदा तुम्हारे ऊपर तथा जो कुछ तुम करते हो और जो कुछ तुम हो उसपर सजग रूपमें विद्य-मान रहे मानों यह प्रकाशका एक विशाल पक्षी है जो तुम्हारे अस्ति-त्वकी सब गतिविधिको प्रभावित करता है।

तुम्हारे अथक और सतत प्रयत्नके फलस्वरूप सहसा एक आंत-रिक कपाट खुल जायगा और तुम एक ऐसी ज्वलंत ज्योतिमें प्रवेश करोगे जो तुम्हें अमरताका आश्वासन प्रदान करेगी तथा स्पष्ट अनुभव करायेगी कि तुम सदा ही जीवित रहे हो और सदा ही जीवित रहोगे; नाश बाह्य रूपोंका ही होता है और अपनी वास्त-

विक सत्ताके संबंधसे तुम्हें यह भी पता लगेगा कि ये रूप वस्त्रोंके समान हैं जिन्हें पुराने पड़ जानेपर फेंक दिया जाता है। तब तुम सब बंधनोंसे मुक्त हो जाओगे और परिस्थितियोंके जिस बोझको प्रकृतिने तुमपर लादा है तथा जिसे वहन करते हुए तुम कष्ट भोग रहे हो, उसके नीचे कठिनाईसे अग्रसर होनेके स्थानपर तुम — यदि इसके नीचे कुचले जाना नहीं चाहते हो तो — अपनी भवितव्यताके प्रति सचेतन होकर तथा जीवनके स्वामी बनकर, सीधे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ सकते हो। पर इस स्थूल देहकी समस्त दासतासे छुटकारा और सब प्रकारके वैयक्तिक मोहसे मुक्ति पाना ही सर्वोच्च सिद्धि नहीं है। शिखरपर पहुंचनेसे पहले और कई मंजिलोंको पार करना होगा। इनके बाद कई और भी आ सकती हैं और आयंगी ही, जो भविष्यके द्वार खोल देंगी। ये अगली मंजिलें ही उस शिक्षाका विषय हैं जिसे मैं आध्यात्मिक शिक्षा कहती हूं।

पर इस नये विषयपर आने तथा इस प्रश्नको विस्तारपूर्वक विचारनेसे पहिले एक बातका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिये। आंतरात्मिक शिक्षा जिसके बारेमें हम अभी कह चुके हैं और आध्यात्मिक शिक्षा जिसके बारेमें हम अब कहेंगे, इन दोनोंमें भेद क्यों किया जाता है? कारण, दोनोंको साधारणतया योगसाधनाका एक ही व्यापक नाम देनेसे ये आपसमें मिलजुल गयी हैं, यद्यपि इनके लक्ष्योंमें बहुत विभिन्नता है। एकका लक्ष्य है पृथ्वीपर उच्चतर सिद्धिकी प्राप्ति जब कि दूसरी समस्त पार्थिव अभिव्यक्तिसे, यहांतक कि संपूर्ण संसारसे पलायन करके अव्यक्तकी ओर लौट जाना चाहती है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि आंतरात्मिक जीवन एक ऐसा जीवन है जो अमर है, अनंत काल, असीम देश, नित्य प्रगतिशील परिवर्तन है, और बाह्य रूपोंके संसारमें एक अविच्छिन्न धारा है। दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतनाका अर्थ है नित्य और अनंतमें निवास करना तथा देश-कालसे, सृष्टिमात्रसे बाहर स्थित हो जाना। अपनी अंतरात्माको पूर्ण रूपसे जानने और आंतरात्मिक जीवन बितानेके लिये

मनुष्यको समस्त स्वार्थपरताका त्याग करना होगा; किंतु आध्यात्मिक जीवनके लिये अहंमात्रसे मुक्त हो जाना होगा।

आध्यात्मिक शिक्षामें मनुष्यका स्वीकृत लक्ष्य, उसके वातावरण, विकास तथा स्वभावकी रुचियोंके संबंधसे, मानसिक निरूपणमें, भिन्न-भिन्न नाम धारण कर लेगा। धार्मिक प्रवृत्तिवाले उसे ईश्वर कहेंगे और उनका आध्यात्मिक प्रयत्न फिर इस रूपातीत परात्पर ईश्वरके साथ तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये होगा न कि उस ईश्वरके साथ जो वर्तमान सब रूपोंमें है। कुछ लोग इसे परब्रह्म या सर्वोच्च आदिकारण कहेंगे, और कुछ निर्वाण; कुछ और जो संसारको तथ्य-हीन भ्रम समझते हैं इसे 'एकं अद्वितीयं सत्' का नाम देंगे; जो लोग अभिव्यक्तिमात्रको असत्य मानते हैं उनके लिये यह 'एकमात्र सत्य' होगा। लक्ष्यकी ये सब परिभाषाएं अंशतः ठीक हैं पर हैं सब अधूरी, ये केवल सद्वस्तुके एक-एक पक्षको ही व्यक्त करती हैं। यहां भी मानसिक निरूपणोंका कुछ महत्त्व नहीं; वीचकी अवस्थाओं-को एक वार पार कर जानेके वाद मनुष्य सदा एक ही अनुभवपर पहुंचता है। जो भी हो, शुरू करनेके लिये सवसे अधिक सफल तथा शीघ्र पहुंचानेवाली चीज पूर्ण आत्मसमर्पण है। इसके साथ ही जिस उच्च-से-उच्च सत्ताकी मनुष्य कल्पना कर सकता है उसके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पणके आनंदसे अधिक पूर्ण आनंद और नहीं है; कुछ इसे ईश्वरका नाम देते हैं और कुछ पूर्णताका। यदि यह समर्पण लगातार स्थिरभावमें तथा उत्साहपूर्वक किया जाय तो एक ऐसा समय आता है जव मनुष्य इस कल्पनासे ऊपर उठकर एक ऐसे अनुभवको प्राप्त कर लेता है जिसका वर्णन तो नहीं हो सकता, परन्तु जिसका फल व्यक्तिपर प्रायः सदा एकसमान होता है। जैसे-जैसे उसका आत्मसमर्पण अधिकाधिक पूर्ण और सर्वांगीण होता जायगा, उसके अंदर उस सत्ताके साथ एक होनेकी तथा उसमें पूर्ण रूपसे मिल जानेकी अभीप्सा पैदा होती जायगी जिसे उसने समर्पण किया है और क्रमशः यह अभीप्सा सब विषमताओं और वाधाओंको पार

कर लेगी, विशेषकर उस अवस्थामें जब कि इस अभीप्साके साथ-साथ व्यक्तिमें प्रगाढ़ और सहज प्रेम भी हो; क्योंकि तब कोई भी वस्तु उसकी विजयशील प्रगतिके मार्गमें बाधक नहीं हो सकेगी।

इस तादात्म्यमें तथा अंतरात्माके साथ तादात्म्यमें एक मौलिक भेद है। अंतरात्माके साथ तादात्म्यको अधिकाधिक स्थायी बनाया जा सकता है और कुछ लोगोंमें यह स्थायी बन भी जाता है और जिसने इसे सिद्ध कर लिया है उसको यह कभी नहीं छोड़ता, उसके बाह्य कर्म चाहे जो भी हों। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि यह तादात्म्य ध्यान और तन्मयतामें ही नहीं प्राप्त होता बल्कि इसका प्रभाव मनुष्यके जीवनमें प्रतिक्षण, निद्रामें और साथ ही जाग्रत् अवस्थामें भी अनुभव किया जाता है।

इसके विपरीत, समस्त बाह्य रूपोंसे मुक्ति, रूपातीत सत्तासे तदात्मता अपने-आपमें स्थिर नहीं रह सकती, क्योंकि यह स्वभावतः ही स्थूल रूपके नाशका कारण बन जायगी। कुछ परंपरागत गाथाएं कहती हैं कि यह नाश पूर्ण तदात्मता स्थापित होनेके बीस दिनके भीतर ही अवश्यमेव हो जाता है। तथापि ऐसा होना आवश्यक नहीं है, और यह अनुभव चाहे क्षणिक ही हो, चेतनामें ऐसे परिणाम उत्पन्न कर देता है जो कभी नहीं मिटते और जो सत्ताके सब स्तरों, आंतरिक और बाह्य दोनों, पर प्रतिक्रियाएं पैदा करते हैं। और एक बार तादात्म्य स्थापित कर लेनेके बाद इसे इच्छानुसार पुनः प्राप्त किया जा सकता है पर एक शर्तपर कि व्यक्ति उन्हीं अवस्थाओंको फिरसे लाना जानता हो।

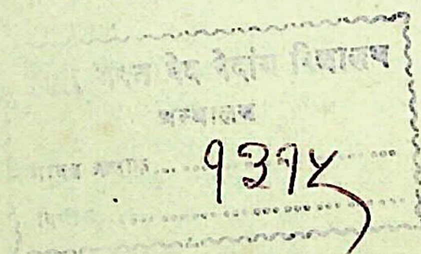
निराकारमें लीन हो जाना वह सर्वोच्च मुक्ति है जिसे प्राप्त करनेकी इच्छा केवल वही लोग करते हैं जो इस जीवनसे छुटकारा पाना चाहते हैं, क्योंकि यह उन्हें अब और आकर्षित नहीं करता। वे संसारके वर्तमान रूपसे संतुष्ट नहीं हैं यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर यह एक ऐसी मुक्ति है जो संसारको जैसा वह है वैसा ही छोड़ देती है और दूसरोंके सुख-दुःखमें कोई सहायता नहीं

पहुंचाती। यह उन लोगोंको संतुष्ट नहीं कर सकती जो एक ऐसे सुखका उपभोग करना नहीं चाहते जिसके वे अकेले या प्रायः अकेले ही भोक्ता होते हैं। ये लोग तो एक ऐसे संसारका स्वप्न देखते हैं जो इसकी वर्तमान अव्यवस्था और सामान्य दुःख-दैन्यके पीछे छुपे हुए प्रकाशपूर्ण वैभवके अधिक योग्य हो। वे चाहते हैं कि जिन आश्चर्योंको उन्होंने अपनी आंतरिक गवेषणामें उपलब्ध कर लिया है उनसे दूसरोंको लाभ पहुंचायें और यह वे कर भी सकते हैं क्योंकि वे अब अपने आरोहणके शिखरपर पहुंच गये हैं।

नाम और रूपकी सीमाओंके परेसे एक नयी शक्तिका आवाहन किया जा सकता है, चेतनाकी उस शक्तिका जिसकी अभिव्यक्ति अभी नहीं हुई है और जो प्रकट होकर वस्तुओंके क्रमको बदलनेमें समर्थ होगी तथा एक नए जगत्को जन्म देगी। क्योंकि दुःख, अज्ञान तथा मृत्युकी समस्याका हल इसमें नहीं है कि व्यक्ति सांसारिक दुःखोंसे बचनेके लिये निर्वाणद्वारा अव्यक्तमें मिल जाय, और न ही सृष्टिके पूर्ण तथा अंतिम रूपसे स्रष्टामें लौट जानेसे समष्टिका वैश्व दुःखसे छुटकारा हो सकता है। यह तो ऐसा हुआ कि विश्वका दुःख दूर करनेके लिये विश्व ही को मिटा देना। इस समस्याका हल जड़तत्त्वके रूपांतर, एक ऐसे पूर्ण रूपांतरमें है जिसे साधित करनेके लिये प्रकृति पूर्णताकी ओर अपने विकासकी ऊर्ध्वमुखी यात्राको उसी तरह जारी रखेगी जैसा कि उसने अबतक रखा है और इससे एक नयी जातिका जन्म होगा। इसमें और मनुष्यमें वैसा ही आपेक्षिक संबंध होगा जैसा मनुष्य और पशुमें है। वह जाति पृथ्वीपर एक नयी शक्ति, नयी चेतना तथा नये बलको अभिव्यक्त करेगी। तभी एक नयी शिक्षाका आरंभ होगा जिसे हम अतिमानसिक शिक्षा कह सकते हैं। यह अपनी सर्वसमर्थ क्रियासे व्यक्तियोंकी चेतनाको ही प्रभावित नहीं करेगी वरन् उस तत्त्वको भी प्रभावित करेगी जिससे वे बने हैं तथा उस वातावरणको भी जिसमें वे रहते हैं। जिन शिक्षाओंके बारेमें हम पहले कह चुके हैं और जो

सत्ताके विभिन्न अंगोंकी ऊर्ध्वमुखी गतिके द्वारा नीचेसे ऊपरकी ओर विकसित होती हैं, उनके विपरीत अतिमानसिक शिक्षाकी विकास-क्रिया ऊपरसे नीचेकी ओर चलेगी, इसका प्रभाव सत्ताकी एक अवस्था-से दूसरीमें व्याप्त होता जायगा जबतक कि वह अंतिम अर्थात् भौतिक अवस्थातक ही नहीं पहुंच जाता। भौतिक अवस्थाका रूपांतर प्रत्यक्ष रूपमें तभी दिखायी देगा जब सत्ताकी आंतरिक अवस्थाएं काफी अच्छी तरह रूपांतरित हो चुकी होंगी। इसलिये अतिमानसकी उपस्थितिको स्थूल रूपोंद्वारा समझनेका प्रयत्न सर्वथा अनुचित है, क्योंकि ये रूप तो सबसे अंतमें बदलते हैं जब कि अतिमानसिक शक्ति व्यक्तिमें बहुत पहलेसे कार्य कर रही होती है। भौतिक जीवनमें तो इसका प्रभाव बादमें ही दृष्टिगोचर होता है।

संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि अतिमानसिक शिक्षाके फल-स्वरूप केवल मानव प्रकृतिका उत्तरोत्तर विकास ही नहीं होगा और न ही केवल उसकी सुप्त शक्तियां ही दिन-दिन बढ़ती जायेंगी बल्कि प्रकृतिका अपना और साथ-ही-साथ संपूर्ण सत्ताका भी रूपांतर हो जायगा। प्राणियोंकी एक योनिका नया आरोहण होगा, मानवसे ऊपर अतिमानवकी ओर, जिससे अंतमें पृथ्वीपर दिव्य जातिका आविर्भाव होगा।



मूल्य रु. ३.